इसके प्रकाशन में विशेष साहाय्य कर्ता ॥

लाला मूल चंद जैन अपने प्रिय पुत्र प्रकाश चंद जैन

नमो त्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्त महावीरस्स

सतीनिदर्शनकाव्यम्

जशमाचरित्रम्

रचयिता

७२ पृष्ठपर्य्यन्त देवेन्द्रनाथ पाण्डेय.

७३ से इतितक, नित्यानन्द-औपमन्यव.

प्रकाशक

श्रीज्ञातपुत्र-महावीर जैन संघ, पाटोदी-स्टेट (पंजाब)

वीराब्द २४७३, विक्रमवत्सर २००३,

शकाब्द संवत् १८६९, सन् १९४७ ई०

विशेष-धनसाहाय्यकर्ता, लाला मूलचन्द्र जैन,

फ़र्म मोजीराम मूलचंद्र जैन, देहली (नयाबाँस).

मुद्रणस्थल—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई नं. २

प्रथमं संस्करणम् २०००

मूल्यं सपादरूप्यकद्वयम्.

मुद्रकः—रामचंद्र येसू शेडगे, निर्णयसागर प्रेस,
नं. २६।२८ कोलभाट स्ट्रीट,
वम्बई २.

प्रकाशकः—मास्टर लक्ष्मीचंद्र जैन,
मन्त्री-
श्रीज्ञातपुत्र-महावीर जैन संघ,
पाटोदी-स्टेट,
पंजाब.

नमो त्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्त महावीरस्स

भूमिका.

यह एक ऐतिहासिक आख्यायिका है। काम-क्रोधादिके वशीभूत होकर उदारचरित मानव कितना पतित हो जाता है, इसीका इसमें संक्षेपसे दिग्दर्शन कराया है। मनोवृत्तिएँ आत्मिक उन्नतिमें किस प्रकार बाधक हो जाती है। अन्तरंग और बाह्य ज्ञान प्रायः लुप्त हो जाता है, नैतिक सामाजिक उत्थान पतनका विवेक जाता रहता है। इसलिए मनको वशमें रखना यही इसमें विशेष शिक्षा है।

जशमाका चरित्र सीता अंजना सुभद्राके समान स्त्रीजातिके लिए अनुकरणीय है। अपनी प्रतिष्ठा एवं जातीय गौरव रखने के लिए निरशस्त्र होकर भी धर्मरक्षाकी धधकती ज्वालामें तृण के तुल्य अपने प्राणोंका होम कर देने वाले वीर ओडोंका चरित्र पढ़ या सुनकर जो उत्साह उत्पन्न होता है, वह मानो हमें ऐसे आततायी आक्रमणोंका सामना करनेके लिए उत्तेजित करता हो।

गुजरात प्रान्तमें इस कहानीका आज भी बड़ी श्रद्धासे गान होता है। वह सरोवर जिसमें वे दम्पती एवं 'वीर ओड' बलिदान हुए थे, अब भी विद्यमान है। और यह भी सत्य है कि इस समय भी उसमें कितनी ही वर्षा या बाढ़ आनेपर भी पानी नहीं ठहरता, आखिर है तो सती ही का शाप!

देवेन्द्र.

नमो त्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्त महावीरस्स

उत्थानिका.

बारहवीं सदीमें सोलंकी वंशके राजा पाटणके नरेश दूसरे सुरेश, गणेश या दिनेशके समान समझे जाते थे। अचलतामें नगेश, और सम्पत्तिमें धनेश यही थे। अधिक क्या लिखें सिद्धराज जयसिंह का महाप्रताप सूर्यके आतापसे टक्कर लेता था।

उस समय पाटणकी उन्नतिका क्या कहना था? उस समयका पाटण भारतभरका पेरिस था। पाटणके प्रासाद, राजभवन और प्रजाकी वासभूमियाँ आकाशमें विचरनेवाले सूर्यके साथ बातें करतीं थीं। उनके ऊपरवाले सुवर्ण कलशों का प्रकाश सूर्यमें संक्रान्त होता था, या सूर्यका प्रकाश उनमें संक्रान्त होता था, यह कहना कठिन था।

पाटणके चौरासी बाज़ार आजके बड़े बड़े प्रदर्शनोंको भुलानेवाले थे। सर्राफोंकी दुकानोंमें सोनेके चिने हुए पाशे चमका करते थे। सुनारोंके नवीन घाट देशभरकी रमणिओ के अंग प्रत्यंग पर अमरवेलकी भाँति छा जाते थे। व्यवहार निपुण सार्थवाहों के कोषोंकी मुद्रा झंकारसे आकाश गूँज उठता था। **जौहरियोंको** हीरा, पन्ना, मोती, माणिक्य, प्रवाल, लसनिया आदि अनेक प्रकार के जवाहरात वारंवार नएसे नए लाने पड़ते थे।

गाँधी बाजार गुलाबजलके फव्वारोंके समान महका करते थे। **पंसारियोंके** यहाँ बग़दादी सुपारी, जंगबारी लौंग और मलाबारी श्रीफलोंके पहाड़ जितने नवीनतम ढेर के ढेर लगे पड़े रहा करते थे। **घीया** के यहाँ गोमाता का स्वच्छ एवं खालिस बर्फ़ जैसा उजला सुगंधित घी और ताजा मक्खन, घडी भर स्थिर न रहकर भामिनिओंके वर्तनों में जा पहुँचता था। **तेलियों** द्वारा घाणीसे पेला हुआ तिलका उत्तम और पारदर्शक तैलसे भरे कुप्पे चंचल ऊँटकी तरह हिलते ही रहते थे।

दान्तिक [दन्दानसाज़-डेंटिस्ट] की दुकान पर छैल-छबीले

और जिनकी बत्तीसी रुष्ट पत्नीकी तरह छुप गई है, ऐसे बूढे भी पुष्ट लोगोंसे होड लगानेके लिए एकत्र हो जाते थे। **बलिया बाज़ार** तो स्त्रियोंके राज्यकी उपमा प्राप्त था। अफ्रीका और सिंहलद्वीपके हाथिओंके दंतूशलोंके बड़े ऊँचे ऊँचे पुंज दृष्टि पड़ते थे। **मणियारों** के यहाँ चन्दनकी चूडियोंसे लगाकर नाना जातिकी बंगड़ियोंके उपरांत सितारे, भरत भरनेके काच, भोडलका चूरा आदिकी चमकसे आँखें चोंधिया जाती थी।

बज़ाज़ोंकी दुकानें आजके लैंकेशायर या मानचेस्टरके कपड़ोंको लजाने वाले नाना प्रकारके वस्त्र-पौष्पिक छींट, कार्पूरक, कास्तूरिक, चौकटिक, दाड़मिक, मेघवर्णीय, पाटोलिक, हाँसिक, गाजिक, उपाँसृतिक, लौमिक, क्षौमयुगल, चीनांशुक, गज़ी और गाढ़ा-खर्दरादि मौलिक वस्त्रोंसे भरी पड़ी थीं। **नेस्ती** के यहाँ से तो जो चाहो वही ले लो, क्यों कि उसके यहाँ तो सब प्रकारकी वस्तुओंका संग्रह था।

सौगंधिकके यहाँ सुगंधित तैल, अतर, धूप, अगरबत्ती, धूपेल, मोगरेल, कोपरेल आदिकी सुरभी महका करती थी। **कार्पासिक** और **ऐरंडिकोंके** कोठोंमें कपास-बनौले एवं एरंडियोंका सदाकाल विक्रय रहने पर भी समावेश न होता था।

रासायनिक—मुलम्मे साज़ोंके यहाँ रूपा-सोना और तांबेका रस चुपड़ कर अनेक प्रकारके मुलम्मे साज़ीका काम हुआ करता था। **प्रावालिकोंके** यहाँ प्रवालके गँज लगे पड़े थे। **कुप्यालय** में पीत्तल-ताँबा और काँसीके पात्र आचार्य और शिष्योंको भी घड़ डालने वाले कारीगर अच्छे अच्छे घाट घड़ा करते थे। **शाँखिकों** के यहाँ शंखसीप आदिसे समुत्पन्न कर्णफूल-अछोट-बुतान और बंगड़ियाँ शोभित थीं। **मुक्ता-प्रोत-मीनाकारी-पच्चीकारी** और **रफूगरोंके** यहाँ ध्यानस्थ योगिओंके समान कुशल कर्मकर मोती पिरोया करते थे। रेशम और ऊन-पश्मीनेकी शालोंको रफू करके नई बना देते थे।

दौकूलिकोंके यहाँ कपड़ों और शालोंमें उछल-भाग करती सूतसे भरतकी हुई मछलियोंकी दौड़-धूपका दृश्य बड़ा मीठा सा लगता

था। **शाक्करों**के यहाँ गुड़शक्कर आदिकी कमी न थी। **परियटोंकी** दुकानें आधुनिक वोशिंग कम्पनी या लौंड्रियोंको नीचे गिरा कर लज्जित करती थीं। **मोची** लाल नरीके सलेमशाही जूते बनाया करते थे। **चूनाकार** चूना पकाते थे। **सूचीकार** अनेक तरहके कपड़े सिया करते थे। **लोहटिए** लोहकी तरह तरहकी बनावटें बनाकर बेचा करते थे। **पीपाघड़** छोटे बड़े सब प्रकारके टीन और पीपे घड़ा करते थे।

भड़भूँजे–चने-मुर्मुरे, खील, धानी और हाजीखानी या मुँजित पदार्थ तैयार रखते थे। **नापितोंकी** कारीगरीको देखें तो आजका हेरकटिंग सलून अच्छा ही न लगे। **काष्ठकार**-लकड़ी की अनेक चीजें बनाकर लोगोंकी आवश्यकताएँ पूरी करते थे। **काष्ठपीठिक** अनेक तरह के चित्र और बेलबूँटे बनाया करते थे। **कागलकार** लिखने योग्य तथा रंग बिरंगे काग़ज़ बनाकर बेचा करते। **सुखास्वादिक** और **कॉदिकों** की दुकानोंमें नाना जाति के मिष्टान्न चुन चुन कर रक्खे हुए थे, जिनके देखने मात्रसे ही मुँहमें पानी छूट पड़ता था। **सर्वंकर**के यहाँ स्वयंके बनाए हुए साबुन के उपरांत भूतड़ा-खार-धोली-पीली मट्टी-गेरू-अरीठा-आचाम्ल सचिक्कण क्षार (सोडा) आदि न्हाने धोने के सम्पूर्ण साधन थे।

लुहार और **कसेरों**के यहाॅ लोह और काँसीके नए नए घाट तैयार होते थे। **ताम्बोलिक** सद्यनिर्मित एवं ठंडे तंबोल-पान मुखवास सदैव तैयार रखते थे। मालाकार-मालिओं द्वारा गुंफित मालाएँ गुलाव-चमेली-मोतिया-मोगरा-चम्पा-कुंद और हारशृंगार सारे बाजारको सुवासित करते थे। मीनी मीनी सुमनसौरभ मन और इन्द्रियोंमें मस्ती उत्पन्न करती थी। **शर्करद** मीठी और श्वेत शर्करा, खांड, बूरा, सुमनशर्करा, मधुशर्करा, गुलकंद, शर्वत, गुड़ और मिंजा बेचते थे। **मजीठियोंके** पास तो किसी प्रकारके किरियानेकी कमी न थी। **पत्र-शाकदोंके** यहाॅ सब प्रकारके साग और भाजिएँ जब चाहो ताज़ी ताज़ी प्राप्त कर सकते थे।

कौत्रिकापण–को देख लें तो आजके वाइटवेलेडलों को याद करना भी पसंद न करोगे, वहाँ चाहो जिस देश या बाज़ार की

वस्तुएँ खरीदने चले जाओ, वस्तुएँ प्रतिपल प्रस्तुत रहती थीं। बौद्धिकनिलयमें घबराए हुए तथा असमंजसमें पड़े हुओंके लिए विश्रामस्थान प्राप्त था। वहाँ इस भाँतिके लोगोंकी नाना प्रकारकी मतियोंका मत और सार निचुडा करता था। वहाँ आगन्तुक लोगोंको अच्छीसे अच्छी सलाह-सम्मति प्राप्त होती थी। वहाँके कारुणिक (वकील) और न्यायाधीशों द्वारा उलझे हुए झगड़ों को सुलझाया जाता था। निखरे हुए न्यायको पाकर लोग सन्तुष्ट होते थे। इनके द्वारा जनपदके विग्रह निवटाए जाते थे। कलह और द्वन्द्वोंको शान्त किया जाता था। उन बौद्धिकालयोंके सामने आज कलके कोर्ट और आधुनिक न्यायाधीशोंका कुछ भी मूल्य नहीं।

इस प्रकार पाटणका बाजार जगत भरमें मिलना अशक्य है। सचमुच यह पाटण विद्या, कला, व्यापार और न्यायका केंद्र था।

इसको चारों ओरसे घेरा डालकर सुरक्षित रखनेवाला, ऊँचे ऊँचे कंगुरोंसे उद्दीप्त प्राकार कितना ऊँचा और विशाल! ओह! इसकी प्रतोलीके उदार द्वार! इस कोटके चारों ओर घूमने वाली पातालसी-ओंडी दीखने वाली बड़ी खाई समुद्रका भाईसी जान पड़ती थी। वहाँ के सुखी लोगोंको देखो तो भूल जाइए देवलोक को भी। 'यथा राजा तथा प्रजा, अथवा यथा प्रजा तथा राजा' वाली कहावत इस पाटणके लिए सोलह आना सही उतरी थी। जितनी उदार प्रजा थी, उतना ही उदार सिद्धराज-जयसिंह अधिराज भी था। पंडितोंका रसिक था, उदार एवं प्रजाके धर्मकी मर्यादाका ज्ञाता और द्रष्टा था। उस राजसभामें अनेक वादी, कवि, मल्ल, धनुर्वेदी, गांधर्ववेदी, आयुर्वेदी और साहित्यरसिकोंके लिए ऊँचे आसन बिछाए जाते थे।

यह परीक्षक-जौहरी रत्नकी परीक्षा करने में सिद्धहस्त था। शौर्य-धैर्य-सहिष्णु के अतिरिक्त मनीषी भी था, कलाकोविदों की कदर करना भी सीखा था। इसकी विद्वत्सभाके मुकुटमणि श्रीहेमचंद्राचार्य प्रखर विद्वान् एवं अदम्य तार्किक जैसे महामानव भी सन्मानप्राप्त थे।

अधिक क्या लिखा जाय, यह महामना एवं उदार आशय सज्जन था।

डमोईके किलेके चार मील तक चारों ओर सत्रागार या सदाव्रत लगे हुए थे, जिसमें साधारण प्रजाजनोंका अन्न, धन और वस्त्रादिसे असाधारण सत्कार किया जाता था।

तीनसौ लेखकों द्वारा लिखवाकर राजकीय महापुस्तकालयमें समृद्ध साहित्य संग्रहीत किया गया था, जिनमें सब प्रकारका साहित्य भरपूर था। जिससे हजारों पठित मनुष्य स्वाध्यायका सम्यक् लाभ पाते थे।

इन्होंने बहुतसी बावड़िएँ और दो सौ से ऊपर तालाब तथा हजारों कच्चे तालाब बनवाए थे। स्थान स्थान पर आज्ञापत्र भी लगवा दिए थे कि कोई भी मनुष्य किसी भी नभश्चर जलचर और स्थलचर आदिका आखेट न करने पावे। आज्ञाका उल्लंघन करनेवालोंके लिए कठोर कारावासका दंड प्राप्त होता था।

इन्हीं राजाने एक बार पाटनके बाहर सहस्रलिंग तालाब बनवाना आरंभ किया। उसमें मालव देशके दुर्भिक्ष पीडित ओड मजदूरी करने आए थे। उनमें अधिपति-स्वरूप त्रिकम ओड अपनी स्त्री जशमाको साथ लाया था। जशमाकी गोदमे ६ महीनेका एक बालक भी था। ये दोनों मिलकर काम करते थे। जशमा मट्टी भी ढोती जाती थी और बच्चेको झुलाती जाती थी। बालकका पालना वड़की शाखसे लटक रहा था। झुलाकर बालकका चाँदसा मुखड़ा देख देख कर वह पुलकित हो जाती थी। बस यहीं से शिक्षाप्रद कथा का आरंभ होता है। राजाने सादे वेशमें जशमाको अकस्मात् घूमते घूमते देखा। वह उसपर मोहित हो गया, क्योंकि उसने मट्टीमें सने हुए नारीरत्न को परखा न था। उसने उससे बातचीत की। साम, दाम, दंड और भेदसे भी काम लिया, परंतु हिमालयके समान उन्नत एवं वज्र से भी अधिक दृढ़ जशमाके हृदय पर उसका कोई प्रभाव न पड़ा। परिणाम क्या हुआ? इसका उत्तर पुस्तकके आगामी पृष्ठोंमें देखिए!

त्रिलोकचंद्र जैन

नमो त्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्त-महावीरस्स

जशमाचरित्रम् ।

सतीनिदर्शनकाव्यम् ।

प्रथमः सर्गः ।

आज सतीके गुण गण गा तू ।
गुण गुम्फित नव भाव सुमनकी, मनको अब माला पहना तू ॥
सहृदय हृदय कुसुम मुस्कायें, सरस सुधारससे भर जायें ।
मधुरिम ध्वनिमय जन मन हारी, काव्य नन्दनोद्यान सजा तू ॥
गंग प्रवाह सदृश लहराती, पूर्ण चंद्रमा सी छहराती ।
अरी लेखनी ललित पदावलि, पंक्ति पंक्तिमें भरती जा तू ॥
उच्च हिमालयके शिखरोंसे, जैसे वर निर्झरिणी झरती ।
भव भय तापित अखिल लोकको, यों ही गतिसे शान्त बना तू ॥
कीर्ति-पताका फहराती चल, नवल कल्पनायें लाती चल ।
अमरलोक तकके रहस्य सब, सम्मुख मेरे रखती जा तू ॥
श्रद्धा-दया-अहिंसाके संग, आस्तिकताकी सुंदर झाँकी ।
आज सजादे अरी लेखनी !, जगती देखे सुषमा बाँकी ॥
भूरि भाव वारिद कदम्बसे, मनो गगनमें लाती जा तू ।
अरी आज कविके मानसमें, प्रासपुंज सब भरती जा तू ॥
धरती जा धरती पे सद्गुण, दोष मध्यके हरती जा तू ।
काव्य चित्र इन पृष्ठ पटोंपर, क्रमशः अंकित करती जा तू ॥

मंगलाचरण ।

जयति जयति जय त्रिशला-नन्दन ।
शासन स्वामी-अन्तर्यामी, हम सब करते हैं अभिनन्दन ॥
ज्ञात-तनय सविनय प्रणाम है, तव चरणोंमें ही विराम है ।
शोभा धाम जिनेश्वर हम सब, करते हैं तुमको अभिवन्दन ॥

पूर्ण चँद्रमा से विकास मय, पाटल सुमन समान हास मय।
सदुपदेश हैं प्रभो! आपके, भव्य मालको शीतल चन्दन ॥
व्योम सदृश विस्तीर्ण ज्ञान प्रद, सत्स्वरूप मानो गंगा नद।
शासन आता चला आपका, मानो मलयानिलका स्यन्दन ॥
आत्मरूप प्राणी पहचाने, एक दूसरेका सुख जाने।
क्षमा दयाको सब सन्माने, हो जायें यह दुरित निकन्दन ॥
इस संघर्षोंकी संस्मृतिमें, धृति होती चंचल प्रति गतिमें।
कृपया प्रभो! जीर्ण नौकायें, पाजाये तट आनन्द कन्दन ॥

दोहा—ॐ-अर्हन् स्वरूपमें, कर स्वरूपका ध्यान।
आत्म-ध्यानसे लिख रहा, जशमा चरित ललाम ॥
जयति जिनेश्वर ज्ञान प्रद, ज्ञाततनय अभिराम।
वर्धमान शासनपते! धर्मपते! निष्काम ॥
सदय सहृदयोंके लिये, अनुपम सुषमा कन्द।
काव्य हृदयहारी बने, हो परितः आनन्द ॥
आप्लावित होता जगत्, कविता सरिता धार।
होगी विद्वद् वृन्दके, उरका उत्तम हार ॥
है सतीत्व ही लोकमें, नारीका शृंगार।
युग युग तक गाते जिसे, सुर नर मुनि कह सार ॥
काव्य सरोवर सुखद है, शब्द सरोज समान।
भाव मधुर मकरन्द है अभि भावक वर पान ॥

प्राचीन भग्नावशेषोंकी शिक्षा

उजड़े नगरोंके खण्डहर लेकर सुस्मृतियाँ नाना।
बतलाते हैं जगतीको अपना इतिहास पुराना ॥
तारक समान रत्नोंसे निज भव्य भवन थे भरते।
तब भाल उठाये हमभी नभसे थे बातें करते ॥
इठलातीसी चलती थीं जब सुंदरियाँ मतवाली।
मुझपर फैला देती थीं निज मुख शशिकी उजियाली ॥

रवि इन्दु सदृश नृपगण जब प्रासादों पर थे आते ।
उदयाद्रि समान कँगूरे तब मेरे थे सज जाते ॥
शशिकी किरणें परियोंसी इन प्रासादों पर नाँची ।
आकर समस्त ऋतुओंने मेरी विभूतियाँ जाँची ॥
पश्चिमके वे वातायन जिनको तुमने अब देखा ।
पहले उनसे झरतीथी उज्वल प्रकाशकी रेखा ॥
असमीप विटप पुंजोमें हैं तिमिर जहां पर गहरा ।
कितनी ही असिधारोंका था कभी वहाँ पर पहरा ॥
मलयानिलके झोके भी आज्ञा लेकर आते थे ।
सामन्त सचिव परवाने पाकर प्रवेश पाते थे ॥
है धराशयित करनेको कितनी बरसातें आई ।
अमृतधारायें कितनी वारिदने स्वयं बहाई ॥
इस शिला हृदयकी कितनी शिशिरादि हुई है चेली ।
कितनी वसन्त सुषुमायें आँगनमें मेरे खेलीं ॥
यह निष्ठुर हृदय हमारा पिघला न हाय! हा किंचित् ।
दृग् जलसे सम्राटोंने जब किये चरण मम सिंचित ॥
अब जीर्ण शीर्ण सा मुझको तुम देख ऊब जाते हो ।
यह देख दुर्दशा दुःखमे, तुम स्वयं डूब जाते हो ॥
पर जो भी करता अति है, आजाती जहाँ कुमति है ।
होती न वहाँ उन्नति है केवल अन्तिम दुर्गति है ॥
इस लिये विश्वको अब हम कर्मोंका मर्म सिखाते ।
अपने उत्थान पतनका सबको हैं दृश्य दिखाते ॥
आने जानेका क्रम है श्वासोंका ताना बाना ।
जो पंचतत्वमें मिलकर होता है शीघ्र पुराना ॥
परिणाम देखकर भी तो है नही बीज पहचाना ।
यह मानव करता रहता है कार्य सभी मन माना ॥
दुष्कर्मोसे न कभी भी जीवन प्रसून खिलता है ।
जैसा करता है निश्चय वैसा ही फल मिलता है ॥

यह जीवन क्षणभंगुर है बुलबुला एक पानीका ।
कर्मानुसार ही फल है अस्तित्व न अभिमानी का ॥
अपने जीवन दीपकको जो परहित सदा जलाता ।
वह इस नश्वरणगतीमें ज्योतिर्मय जीव कहाता ॥
इसलिये साधु कहते हैं कर्मोंकी गति विधि जानो ।
कल्याण तभी है भवमें, जब आत्मरूप पहचानो ॥
श्रीभगवान् ज्ञातनन्दन औ, श्रीयुत कृष्णचन्द्र भगवान् ।
अपने प्रतिपदमें सिखलाते, मानवको आत्माका ज्ञान ॥
एक उदधिमें गंगा यमुनादिक नदियां जैसे आतीं ।
कोटि महापुरुषोंकी यों ही शिक्षायें हैं मिलजातीं ॥
केवल आत्मरूप चिन्तन ही, प्राणिमात्रका कर्म प्रधान ।
गीता प्रभृति अखिल ग्रन्थोंमें किया गया इसका ही गान ॥
आत्मा द्वारा आत्मोन्नति कर आत्माको कर्ता पहॅचान ।
वस्तु तत्वको जान वस्त्रसे ज्ञानी जन लेते हैं छान ॥
आत्मा ही समस्त सुख दुःखका केवल एक सत्य कर्ता ।
तथा आत्म दुष्कर्मोंमें आत्मा ही होता संहर्ता ॥
"अप्पा कत्ता" गाथासे श्रीमहावीर हैं सिखलाते ।
"उद्धरेदात्मनैवात्मा" कृष्णचन्द्र हैं बतलाते ॥

दोहा—आत्मरूप पहचान कर, करो सदा सत्कर्म ।
महापुरुष कहते सभी, जीवनका यह मर्म ॥
आत्मा ही निज शत्रु है, आत्मा ही है मित्र ।
पूर्ण रूपसे जान यह जीवन करे पवित्र ॥

'अप्पा मित्तममित्त' आदि गाथासे होता ज्ञात यही ।
'आत्मैव ह्यात्मनो बन्धु' आदि है श्लोक बताता बात यही ।
देहली दीपक सा रह मानव, भीतर बाहर दे उजियाला ।
दूर हटा तमको निज धूमको, तू न बना निज आसन काला ।
तूल है क्या तथा क्या यह मृत्तिका औ किसने यहाॅ स्नेह है डाला ।
क्यों यहां आया स्वरूप क्या जानके उज्वल तू कर देह की शाला ।

दोहा–यही ध्येय रख सामने, खींचा कविता चित्र ।
लाभ उठायें लोक पढ़, जस्माका सुचरित्र ॥

दोहा–पावन भारतवर्षमें, पाटनपुरी ललाम ।
अमरपुरी सा था कभी, जो शुभ शोभा धाम ॥

वह नगर अंगूठी का नग सा वर प्रेम सुधाका प्याला था ।
सब ओर शान्ति सुख छाये थे, विद्याका शुभ उजियाला था ॥
बहु चन्द्र-चुम्बि प्रासाद वहाँ अम्बरसे बातें करते थे ।
वैभवसे हो परिपूर्ण सभी सुखकी बरसातें करते थे ॥
भवनोंके उच्च कगूंरोंसे होता था नयनोंका रंजन ।
मानो वे उठा भुजायें निज करते थे नभका आलिंगन ॥
सुस्फटिक शिलाओंके आलय विधुके प्रकाशसे हँसते थे ।
पाटनमें करनेको निवास स्वर्गौकस देव तरसते थे ॥
शत शत मणियोंकी किरणोंसे नर तमसे घातें करते थे ।
जो घोर अमावस्याओंमें उजियाली रातें करते थे ॥
ऊँचे ऊँचे कुछ हर्म्य शिखर रविकी किरणोंसे राजमान ।
जिनमें सुमेरु पर्वतके से थे दृश्य मनोहारी ललाम ॥

दोहा–शान्ति सौख्य सरिता वहाँ, बहतीथी दिनरात ।
मानो होतीथी सदा अमृतकी बरसात ॥

नीलमसे जड़े चौतरे थे, हीरोंसे भरी दुकानें थी ।
सब श्वेत पत्थरोंकी सड़कें विस्तृत शोभाकी खानें थीं ॥
मानो निशीथके शुभ नभमें, नक्षत्र राशिथी पड़ी हुई ।
फिर मध्यभागमें, मन्दाकिनि हो रजतपत्रसी जड़ी हुई ॥
प्राचीन नरेशोंका जब था, उत्ताप न उसने सहन किया ।
तब गिरि सुमेरुने स्वर्ण स्वयं अपना ही मानो बहा दिया ॥
स्वर्णिम निकेत मानो उससे ही कान्ति नई वे कर देते ।
आगन्तुक पथिक लोचनों से जो चकाचौंध थे भर देते ॥
बाजारोंमें व्यवसाय सभी सत्यता पूर्व ही चलता था ।
जिससे सुख पूर्वक सबका ही श्रद्धासे काम निकलता था ॥

सबमें आपसमें मेल जोल झगड़ेकी कहीं न बातें थीं।
सीधे सादे सब रहते थे छलवाली कहीं न घातें थीं ॥

दोहा—उसी पुरीमें एक था, रम्य राज प्रासाद।
उन्नतिमें गिरि शिखरसे करता रहा विवाद ॥

बारवीं सदीके सोलंकी कुलके तेजस्वी महाराज।
श्रीसिद्धराज जयसिंह वहां करते निवास थे विभव साज ॥
वे पाप तापके ह्रासक थे वे लोक शोकके नाशक थे।
वे दुष्ट खलोंके त्रासक थे वे इस प्रदेशके शासक थे ॥
उन्नत ललाट वर भुज विशाल विक्रम सम बलसे राजमान।
मृदु तरुण अरुण सा था प्रबोध औ प्रात सूर्य से भ्राजमान॥
थे अति उदार विद्वान् स्वयं गुणियोंका आदर करते थे।
उनके प्रबंधसे सिंह हरिण निर्भय हो साथ विचरते थे ॥
प्रतिपदा चन्द्रमाके समान वैभव बढ़ता दिन दूना था।
उनका शासन धर्म प्रधान जगतीमें एक नमूना था ॥

कवित्त—दुर्ग था डभोई जो कि उसके ही चारों ओर,
चार मील तक बहु सदाव्रत राजमान।
जिनमें कि भेद विना देश औ विदेशवाले,
भूखे नंगे प्राप्त करते थे अन्न वस्त्र दान।
उनमें नियत थे उदार कर्मचारी बहु,
देखते ही लेते थे सुपात्र आदि पहँचान।
अति ही प्रसन्न उसे देखके सभी थे होते,
आते दूर दूरसे अनेक जो थे महमान।
पूर्ण चॉदनीसा उसका था यश फैला हुआ,
तारकोंसे नृपके अगण्य गुण गण थे।
सत्यका उजाला लोक-लोकसे था भासमान,
उसके अपूर्ण कभी होते नहीं प्रण थे।
आत्म ज्ञान चिन्तनमें रहता था लवलीन,
व्यर्थ ही विताये जाते नहीं कहीं क्षण थे।

पर वस्तु तृणके समान जानते थे सब।
अन्यकी चढ़ाई विना करते न रण थे ॥

दोहा—पथिक तथा सब प्रजाजन, पायें छाया दान।
बनवाये सब ओर थे, सफल सुघर उद्यान ॥
उपवन सुंदरथे सभी ओर फल पुष्प लगे मन भाये थे।
राजाने निज जनताके हित यह सुंदर साज सजाये थे ॥
मंजुल रविशोंके तीर तीर छोटी वर नहरें चलती थीं।
मानो अमृतकी धारायें, अमृत प्रवाहमें ढलती थीं ॥
थे कूप बहुत थीं बावलियाँ जो सबकी थकन मिटाती थीं।
शाखोंपर चिड़िया चहक चहक नृपकी विरुदावलि गाती थीं ॥
लयसे मलय अनिल आता ताली पत्तोंकी बजती थी।
किन्नर मयूर नाचा करता, कोयलकी मुरली बजती थी ॥
वृक्षोंके हरे शामियाने अति सुंदर छाया करते थे।
उत्सव होता था वहाँ सदा निज पथिक थकावट हरते थे ॥
जो भी सज्जन आजाते थे उन सबका स्वागत होता था।
वेले का पादप सबके हित हीरोंके हार पिरोता था ॥

दोहा—दाडिम द्रुमके कुसुम बहु, पाते नवल विकास।
मानो उत्सवमें किया करते थे सुप्रकाश ॥
भौंरे कलियोंको चूम चूम, मनहारी गाना गाते थे।
खग झूम झूम कर एक साथ सब मिलकर तान मिलाते थे ॥
दर्शन करने जो आते थे मदमस्त सभी बन जाते थे।
सुषमा पाटनकी देख देख, अन्तरसे बलि बलि जाते थे ॥
डालियाँ डुलाकर वृक्ष स्वयं पंखासा वहाँ हिलाते थे।
आगत पथिकोंको पत्तों पर रख कर फल मूल खिलाते थे ॥
मनभावन शान्त महीतल था हीतल शीतल हो जाता था।
उन बागोंमें आ कर क्षणमें, प्रतिबोधित भी सो जाता था ॥
कितने कविजन आकर समोद मन चाही रचना करते थे।
कितने भावुक लेखक प्रवीण पन्नोंके पन्ने भरते थे ॥

इस भाँति वहाँ के वर उपवन सेवाका मूल्य न लेते थे ।
उपकार करो मानो जग पर निज कृतिसे शिक्षा देते थे ॥

दोहा—लोभ मोहका है यहाँ, होता नहीं प्रसार ।
मानो तरु निष्काम हो, पाते फल उपहार ॥
भ्रमरोंकी भीड़ पा पराग पुष्पोंकी सेजों पर सोती ।
कलियाँ भी काम दुशालेका, देतीं उनकी चिन्ता खोतीं ॥
आ मेघ मालिकायें इसको सर्वदा हार पहनाती है ।
रात्रियाँ तारकोंके समान फल पुष्पोंसे भर जाती है ॥
चिन्तितकी चिन्ता हरते हैं, दुःख भार दूर यह करते हैं ।
सूखे मस्तिष्कोंके अन्दर ताज़गी हमेशा भरते हैं ॥
गर्मी सर्दी बरसातोंमें यह वृक्ष खड़े ही रहते हैं ।
तप करते हैं मानो सदैव फिर क्लेश अनेकों सहते हैं ॥
सत्कर्मोंके परिणामरूप मानो इनको वरदान मिला ।
हरियाले पत्र वस्त्र पाये फिर सौरभसे सन्मान मिला ॥
अनिलान्दोलित वर लतिकायें झुकतीं हैं पृथिवी पर ललाम ।
मानो आते जाते मानव गणको झुक करते हैं प्रणाम ॥

दोहा—भाव यही सिखला रहे, विनयी हों सब मित्र ।
आत्मज्ञानसे स्वयं को, प्राणी करें पवित्र ॥
जब ऋतु वसन्त याचक बनता, यह अपने पत्ते देता है ।
प्रतिदान रूपमें नव पल्लव कोमल कोमल पा लेता है ॥
इस विनिमयके द्वारा मानो प्रतिप्राणीको सिखलाता है ।
जो दिया दानमें मिलता है वह नहीं अकारथ जाता है ॥
इस भाँति अनेकों उपवन थे परितः नगरीके बनवाये ।
थे जिन्हें देखकर देवोंने नृप सिद्धराजके गुण गाये ॥
जिनमें विशाल कूपोंमें थे अरघट्ट अनेकों लगे हुये ।
मृग सिंह साथ पानी पीते थे वहाँ प्रेममें पगे हुये ॥
फव्वारोंकी फिर बीच बीचमें सुंदर बहुत कतारें थीं ।
चिड़ियायें करतीं स्नान जहाँ, मुखरित होतीं मीनारें थीं ॥

चलते थे जब जल यंत्र सभी मोतीसे वहाँ बरसते थे ।
उद्यानोंकी यह देख छटा व्याकुल भी आकर हँसते थे ॥

दोहा—कुछ तो जीर्ण तथैव कुछ, बाल वृद्ध भी रूख ।
कारणवश जो थे गये, कही एक दो सूख ॥

प्राणीकी करुण दशाओंकी मानो तसवीर दिखाते थे ।
होना इक दिन है यही हाल निज आकृतिसे सिखलाते थे ॥
यह जग है एक नाट्यशाला रहती न किसीकी मनमानी ।
कितनोंकी छिपी चली जाती, मनमें जो ठान आज हानी ॥
मट्टीका एक घरोंदासी मानवकी भंगुर काया है ।
जगकी तृष्णा है भ्रान्ति व्यर्थ मायाकी झूठी छाया है ॥
रहता न लाल अम्बर कोई, रहता न शाल कोई धानी ।
रहता न फूँक पदधारी भी रहता न कोई भी अभिमानी ॥
कुछ सूत्रधार बनकर जाते, कुछ गुणागार बनकर जाते ।
कुछ हैं सवाब लेकर जाते, कुछ गुनहगार बनकर जाते ॥
रहती न निशानी कायाकी, सब जाते राजा रानी है ।
केवल कहनेको रहजाती अपनी ही धर्म कहानी है ॥

दोहा—प्रकृतीका कण-कण उसे, समझाता है आप ।
फिर भी मानव गर्वसे, करता ही है पाप ॥

पर सिद्धराज राजा इससे सर्वदा दूर ही रहता था ।
जनताको मुझसे क्लेश न हो यह बार बार वह कहता था ॥
पानीका कहीं अभाव न हो पशु पक्षी भी मन भर पायें ।
वे निर्मल जल पायें सदैव पीकर सब हर्षित बन जायें ॥
बस यही सोचकर कितने ही नौकर उस ओर लगाये थे ।
दोसौ से ऊपर बड़े बड़े पक्के तालाब बनाये थे ॥
कच्चे तो थे तालाब बहुत, जिनका गिनना भी दूभर था ।
फिर भी अनुमान ज्ञानियोंका प्रायः सहस्रसे ऊपर था ॥
इन सबमें घाट बने सुंदर जल पान और सुस्नात हेतु ।
मानो राजाने बनवाये परलोक हेतु थे महा सेतु ॥

कोई यदि कष्ट किसीको हो सब अभी सामने बतलाये ।
मैं यथासाध्य पूरा करदूं जिससे न कलंक जरा आये ॥

दोहा—बोले सब मिल कर यही, सभी जगह सुख चैन ।
राजन्! शासन आपका, है आनँदका अयन ॥

तब अर्थ सचिव ही हाथ जोड़, नृपके सम्मुख आगे आया ।
पाटन नगरीमें एक ओर है, नही सरोवर बनवाया ॥
यदि स्वामीका आदेश मिले, तालाब वहां पर बन जाये ।
कुछ जलका जो उस ओर कष्ट, वह सर्वदैवको मिट जाये ॥
राजाने फ़ौरन आज्ञा दी, आवश्यक वस्तु मँगालो तुम ।
जल्दी से जल्दी इक विशाल, पक्का तालाब बनादो तुम ॥
पर्वाह न व्ययकी तुम करना, तट सुन्दर सुन्दर बनवाना ।
स्त्री पुरुषोंके पृथक् पृथक् सुस्थान स्नान हित बनवाना ॥
स्वच्छता पूर्ण गंभीर बने, जल पीनेमें सुख दायक हो ।
छाया शीतल हो सुखद सदा, नव शोभाका आधायक हो ॥
बनवाना शीघ्र शुरू करदो, देखने वहाँ मै आऊँ गा ।
फिर क्या करना है कहाँ कहाँ, मै सब तुमको समझाऊं गा ॥

दोहा—एक चित्र भी खींचलो, कागज पर अभिराम ।
फिर उसके अनुकूल ही, शुरू करा दो काम ॥

हाँ जो कि वहांके अधिवासी उनकी सलाह लेते रहना ।
हो अगर बात कुछ और कभी तो, फौरन ही मुझसे कहना ॥
मेरी यह प्रजा प्राण सम है, उनका मेरा अटूट नाता ।
कहनेको मैं उनका पालक, पर वास्तवमें यह मम त्राता ॥
क्षत्रिय हूं इनकी रक्षा हित, जीवन मेरा न्यौच्छावर है ।
इनकी ही सत्कृतियों द्वारा, यह भूमि देशकी उर्वर है ॥
यह मेरे हैं मै इनका हूं, कहनेको केवल राजा है ।
दर अस्ल राज्यका कुल वैभव, इन लोगोंने ही साजा है ॥
मैं तो केवल इनका नौकर, प्रहरीसा काम किया करता ।
उसके बदलेमें खर्चेको, वेतन हूं बहुत लिया करता ॥
इस लिये प्रजा सच्ची मालिक, इसका सब कार्य बजाएँ हम ।
हो कोई कमी जहाँ परभी, उसके परिपूर्ण कराएँ हम ॥

दोहा—सिद्धराजके जब सुने, वचन प्रेमसे जन्य ।
शत शत कंठोंने कहा, धन्य धन्य नृप धन्य ॥
राजन्! तुम सद्गुण आगर हो, मतिमान् दान्त हो नागर हो ।
यों साथ साथ अन्तस्तलसे, तुम उदारताके सागर हो ॥
तुमसा नृप पाकर आज, होगए हम सब निश्चय बड़भागी ।
राजा हो कम देखे जाते, हैं हे नरेन्द्र! तुमसे त्यागी ॥
यदि ऐसे ही सब राजा हों, उन्नति भारतकी हो जावे ।
यह इधर उधर जो है अशान्ति, वह सर्वदैव को खो जावे ॥
जिनके शासनमें प्रजा सुखी, झण्डा न वहाँ का झुकता है ।
अन्यथा चक्रवर्ती होकर, भी रथ आगे जा रुकता है ॥
कुछ जो महत्वका अहंकार, ले भूल प्रजाको जाते हैं ।
निश्चय उनका है दुःखद पतन, अपना न जोकि अपनाते हैं ॥
जो जटिल समस्याओंको नृप, सामने प्रजाके लाते हैं ।
छल करते हैं या जनतासे, वे स्वयं उलझते जाते हैं ॥
दोहा—पर राजन्! है आपका, यह व्रत गुणकी खान ।
सदा विजय हो आपकी, हे औदार्य निधान ॥
वागेश्वरी—जय हो राजन्! सदा तुम्हारी ।
हृदय मिला करुणा वरुणालय, पाप ताप सब करडाले क्षय ।
न्याय सहित हो चला रहे नय, दुःखियोंके दुखःहारी ॥१॥
तुम उदार गुणवान सदाशय, प्रेम हृदयका करते विनिमय ।
मन खिंचता पाते ही परिचय, हो औदार्य शौर्य व्रतधारी ॥२॥
अटल तुम्हारा राज्य रहे यह, औ इतिहास सदैव कहे यह ।
यहां अमृत सुरधार वहे वह, फैले चहुं दिशि कीर्ति तुम्हारी ॥
दोहा—अन्तिम शिष्टाचार कर, पूँछ क्षेम अवशेष ।
विदा हुए घरको गए, यह नागरिक अशेष ॥
पाठक अब तुलना करें, क्या तब अबका भेद ।
पहले जनता थी सुखी, अब पाते हैं खेद ॥

इति प्रथमः सर्गः ।

नमो त्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्त महावीरस्स

सतीनिदर्शनकाव्यम् ।

जशमाचरित्रम् ।

द्वितीयः सर्गः ।

कथाका उत्थान ।

दोहा—नवल जलदमय जलधि सम, धनधान्यादि निधान ।
वर अवन्ति के देश हैं, शोभाकी शुभ खान ॥

सवैया—क्षिप्रा नदी जहाँ विष्णुपदी समा प्राणियोंके हरती सब क्लेश है
शान्ति है आत्मिक क्रान्तिके संग विचार तरंग वनश्री विशेष है
प्रेम अशेष उरोंमें बसा भ्रमका तम है नही और न द्वेष है
स्वर्गका वेष सा धारे हुये इसी भारतमें वह मालव देश है
जिसको अवन्तिका वर प्रदेश कविकोविद कह गौरव गाते
जिसकी समृद्धिका वर्णन पढ़ हम अब भी हर्षित हो जाते
कविकुल गुरु कालीदास की भी जो दूत मार्ग सहचरी रही
जिसके द्वारा सौभाग्यवती यह भारत मही है गई कही ॥
विद्वान् बाण कविने जिसका वर्णन जी भर कर पूर्ण किया
कितने ही अन्य पंडितोंने जिनका कि काव्य पीयूष पिया ।
कहते हैं विक्रम भोज नृपति थे कहीं यहीं गुणवान् हुये ।
उज्जयिनी औ धाराके जो क्रमशः शासक मतिमान हुये ॥
आज भी वहाँकी पुण्य भूमि कुछ बीती याद दिलाती है ।
अपनी इतिहास कथाओंसे जो दिलकी कली खिलाती है ॥
अब भी समता उनमें बसती जो विंध्याचलके लघु पत्थर ।
है एक कराह छिपाये से जो कुछ बिखरे हैं इधर-उधर ॥

दोहा—अब भी पश्चिम वात जब, छूता इनका गात ।
साँय साँयमें रुदन कर, कहते बीती बात ॥

सवैया—हाय न भोज नरेंद्र हैं सम्प्रति और न भारत राजदुलारे।
हा पदाक्रान्त विदेशियोंसे अब होगये हैं वे घने वन सारे॥
विश्वके शिक्षकोंकी यह दुर्दशा देख न टूटते व्योमके तारे।
तू ही बतादे अनन्तकि अन्तमें है कहाँ पे छिपे भाग्य हमारे॥
जनपद मालवा वही सुन्दर अब भी जगमें सुखदायी है।
जिसने त्रिलोक वाली सुषमा निज वसुधामें अपनायी है॥
बारहवीं सदीका समय वही भारत अति वैभवशाली था।
बीसवीं सदीकी भाँति नहीं तब कोष यहाँका खाली था॥
यद्यपि महमूद गज़नवीके आक्रमण हो चुके भीषण थे।
फिर भी यवनोंके संग खेलनेको तैयार बहुत रण थे॥
लेकिन मालव जनपद तब भी प्रतिमानवको मनभावन था।
सुन्दर तरुओंसे क्षेत्रोंसे परिपूर्ण यहां प्रति उपवन था॥
लोगोंमें था अत्यन्त प्रेम सब एक समान विहरते थे।
सब ओर दया थी सत्यधर्म ध्वज नभके मध्य फहरते थे॥
सुन्दर रसालके तरुओंपर ऋतुओंका संगम होता था।
फिर नववसन्तमें पिकध्वनि सुन प्राणी सब सुध बुध खोता था॥

दोहा—सेवा करते भ्रमर थे, वन सुमनोंके भृत्य।
मुकुल शिखों पे तितलियाँ, करतीं सुंदर नृत्य॥
था सब भाँति विनोदमय, शोभाका भण्डार।
पाप न था कैदी न थे, खाली कारागार॥
सारे आनन्दित थे किसान, सुन्दर हरियाली रहती थी।
मानो विभूतिकी महानदी, मालवमें उमड़ी बहती थी॥
गाती थी कृषक सुतायें जब, आती थीं सघन मेघ माला।
बरसातीं थीं सुन्दर फुहार, करके मयूरको मतवाला॥
वह किन्नरके समान बादल, दल देख नाचता रहता था।
प्रहरी सा निज ध्वनि पर आगम, सर्वदा जाँचता रहता था॥
वर झिल्लीकी झंकारोंसे, या सघन मूसलाधारोंसे।
दर्दुरकी प्रणय प्रकारोंसे, पुष्पोंके सुंदर हारों से॥

मालव प्रदेश इस भाँति सदा, अनुपम शोभाका राशी था।
वह प्राणिमात्रके हृदयोंका, क्षणमें परिपूर्ण विकासी था॥
कुछ चित्रकार यह छटा देखकर, चित्र लिखित रह जाते थे
कितने केवल वर्णन सुनकर, शव्दोंमें ही बह जाते थे॥

सवैया—मालवा था इस भाँति मनोहर कान्ति महत्वका केन्द्र वना हुआ
औ जिसके नव वैभवका वर मण्डप मानो महा था तना हुआ
था नदियोंका प्रवाह या सुन्दर चन्द्रमा का रसही था छना हुआ
जाल जहां लहरोंका विशाल मनुष्यके जीवनका सपना हुआ
क्षिप्रा नदी वहती वहाँ थी अपने रसका महाकोष लुटाती
औ निज निम्न प्रवाहसे नम्रका पक्ष करो यह सीख सिखाती
व्योमकी श्यामलता प्रतिविम्वके व्याजसे मानसमें अपनाती
देख तरंग वहाँ जन मण्डली प्रेमसे थी यह गायन गाती
जीवनकी गतिसे अतिकम्पित यौवनका रस रंग लिये हुए
नृत्यकला कुशला परीसी किसी सुंदरीका नया ढंग लिये हुए
मानसमें प्रतिविंवके व्याजसे विश्वकथाका प्रसंग लिये हुए
गाती अनंगकी अंगना सी चलती है तरंग उमंग लिये हुए
जीवनका ये चढाव उतार है जीवनसे यह निर्मित काया।
जीवनमें मिलेगी क्षण एकमें जीवनने जिसे है अपनाया॥
है जितने दिन जीना यहां उतने दिन जीवनकी मिली छाया
क्या पता है पलमें मिलाले तुझको निज जीवनमें महामाया
यों सुखसे परिपूर्ण था मालवा स्वल्प कहीं दुःख क्लेश नहीं था
महा धन धान्यसे था भरा पूरा दीनताका कहीं नाम नहीं था
जो कि पदार्थ वहाँ पे मिले नहीं ऐसा कोई कहीं शेष नहीं था
चाहता जो यहां राज्य न हो जगमें कोई ऐसा नरेश नहीं था

दोहा—सृष्टि सर्गमें नया था, इसका सुंदर वर्ग।
मानो पृथिवी पर यही, वना हुआ था स्वर्ग॥
ललचाते सव देव थे, करें यहां पर वास।
ऐसा कुछ था हो रहा, प्रतिदिन वहां विकास॥

सवैया—था जिस स्वर्गके लोकसे देशमें सान्द्र विनोद घनेरा हुआ।
शस्यसे श्यामल जो था तथा नव वारिदोंका सदा फेरा हुआ ॥
यों बसनेके लिये सदा चावसे देवतोंका चित्त चेरा हुआ।
कालके चक्रसे था उसी पे हा! कराल अकालका फेरा हुआ ॥
रविकी किरणें अति तीक्ष्ण हुईं सूखने लगी सब हरियाली।
पृथिवीका ताप मिटानेको आईं न घटायें थी काली ॥
सूखने लगीं फ़स्ले सारी, दुर्भिक्ष देख सब घबराये।
नर नारी करते थे पुकार पर बादल वहाँ नहीं आये ॥
बालक औ वृद्ध प्रार्थना कर आकाश देखते रहते थे।
हो खड़े धूपम कोई तो उस महा-दाहको सहते थे ॥
बेचारे कृषक हाथ जोडे उच्चारा करते कृषक गिरा।
फिर भी निष्ठुर था महामेघ जो नहीं एक भी बूंद गिरा ॥
आतपसे तापित वसुंधरा यह तप्त तवा सी बनी हुई।
द्रवरूप अग्नि ज्वाला मानो रविके छन्नेसे छनी हुई ॥
प्रातः में भैरविके गायक गन्धर्वोंसे कण्ठों वाले।
सन्ध्यामें दीपक राग सुना गृहमें प्रकाश करने वाले ॥
कुछ दिन अवलोक मानवोंको व्याकुल हो प्राण बचाते थे।
फिर निज समाजके सहित बहुत रोते रोते उड़ जाते थे ॥
गायों भैसों का आर्तनाद, दिलको भी चीरे देता था।
दुर्भिक्ष राक्षस मुँह फाड़े, सबका भोजन कर लेता था ॥

दोहा—बकरी भेड़ मृगादि सब, सिंह शशक-गज-श्वान।
हय रासभ थे सब हुए, केवल शोक निधान ॥
ऐसा कराल दुष्काल पड़ा, दूसरा न उसकी सानी का।
खाना दाना तो दूर रहा, पाना मुश्किल था पानी का ॥
जिस जगह भूमि थी हरी भरी सूखे पनकी ही थी चरमर।
आंखें फाड़े रह जाते थे कितने ही व्याकुल नारी नर ॥
पशु-पक्षी-व्याकुल तड़प तड़प भूखे प्यासे यमलोक गये।
जो बचे छोड़कर वह प्रदेश मिलकर अन्यत्र सशोक गये ॥

कवित्त—चारों ओर नाचता पिशाच सा अकाल ही था,
एक पलको न वहां कोई कल पाता था ।
कलप-कलप सव समय बिता रहे थे,
हर एक अपने पे आप पछताता था ॥
इतना वढ़ा था ताप देश अभिशाप सम,
दिनकर मानो आप अग्नि वरसाता था ।
मोह वश पुरुष समूह किन्तु और कहीं,
गृह द्वार छोड़कर अपने न जाता था ॥

सवैया—यद्यपि नारिओं औ सुतोंपे दिखला अनुराग सके नहीं मानव ।
औ अति भीषण ज्वालामयी भी वुझा वह आग सके नहीं मानव ॥
थे इतने महावन्धनोंमें जो कुटुम्वको त्याग सके नहीं मानव ।
साथ ही में महामोहसे हा ! घर वार भी त्याग सके नहीं मानव ॥

दोहा—पर फिर था वढ़ने लगा, इतना भीषण ताप ।
जैसे आग लगा रहा हो पापीका पाप ॥
सव ओर वढ़ गया तीव्र ताप मरु भूमि हुई सव हरियाली ।
सव घास फूस तिनके तक भी थे सूख गये सुषमाशाली ॥
अव उजड़ चुके थे वन उपवन वे पक्षी नहीं चहकते थे ।
उस महातापसे कंकड़ भी अंगार समान दहकते थे ॥
जो हरे भरे थे प्रथम रूख वे ईंधनके उपमान हुये ।
हो गये खेत ऊसर सारे वन उपवन रेगिस्तान हुये ॥
तालाव कूप वावड़ी सभी थीं सूख सूख जल हीन हुईं ।
नदियोंमें पानी नहीं रहा थीं सहसा ही थी दीन हुईं ॥
उड़ता था उनमें सिर्फ रेत थी शान्ति शृंखला गई टूट ।
मानो नदियोंकी निधिको ही दुर्भिक्ष दस्युने लिया लूट ॥
लपटोंके द्वारा झुलस मार्गमें जो टूटे थे वृक्ष पड़े ।
वे भीषण लगते थे ऐसे लड़नेको जैसे हुये खड़े ॥

दोहा—लू का होता था वहां, अमितः वज्र प्रहार ।
सूर्य वायु मानो मिले, करनेको संहार ॥

सर्व ओर विकट भीषणता थी, जाती थी जितनी दूर दृष्टि।
थी आर्तनादसे ओत प्रोत मालवा भूमिकी अखिल सृष्टि॥
कर डाला था तूफ़ानोंने उस जगह भयंकर परिवर्तन।
मानो अकालका वेष धरे करता था काल वहाँ नर्तन॥
सूखे हड्डीके ढाँचोंसे तब थे वह मानव मात्र हुए।
कंकड़की आवाज़ों वाले आबाल वृद्धके गात्र हुए॥
बच्चोंको भूखा देख देख व्याकुल थे हाय! पिता रहते।
पर थे वे सब निरुपाय सिर्फ आखों से थे आंसू बहते॥
भूखे प्यासे निज शिशुओंको मातायें देख न पाती थीं।
वे उनकी प्यास बुझानेको आँसू की धार बहाती थीं॥
आँसू के वर्तन लोचन भी थे सूख गये कुछ ही दिनमें।
अपने बच्चों के खातिर वे भर लातीं थीं कुछ जल जिसमें॥

दोहा—अति भीषण उत्तापसे, श्वास हो रहा मंद।
रीते लोचन पात्र थे, आँसू गिरना बन्द॥
प्रलय कालमें वारिसे बँधती है कुछ आश।
वह उससे भी अधिक था पानी हीन विलास॥

गीत—झुलस गई थीं सभी लतायें जीर्ण हुए पत्ते सारे।
शीर्ण हुए थे झाड़ी झंकड़ जो कि कभी थे अति प्यारे॥
अरे अकाल मृत्युसे कवलित जन पद वह सविशेष हुआ।
लाशोंके तूमारोंसे कुल था श्मसान वह देश हुआ॥
ऐसी सूख गई थीं नदियां कीचड़ भी न दिखाती थीं।
केवल रेणु राशि उड़ उड़ कर आँखोंमें पड़ जाती थीं॥
रक्त हीन मानव शरीर थे कंकालोंके ठाठ लगे।
हा कितने ही नव असमयमें युवक मौतके घाट लगे॥
निज परिजनको मृतक देख वे जब समीप कुछ आते थे।
साथ साथ क्रन्दनके अस्फुट इतना कहते जाते थे॥
हाय कौनसे पापोंका हमको ऐसा फल भार मिला।
जो कि देखनेको नयनोंसे ऐसा नर संहार मिला॥

हाय! देखते ही वे इनको फिर मूर्छित हो जाते थे।
और बहुतसे सर्वदैव को पृथिवी पर सो जाते थे॥
देख दशा ज्ञानी वृद्धोंने इक दिन सबको बुलवाया।
यहां मरण निश्चित है इससे चलो कहीं यह समझाया॥
यह न टलेगी बला शीघ्र जब सबने इतना जान लिया।
छोड़ दिये घरबार देहली बाहरको प्रस्थान किया॥

दोहा—किसी भाँति यह दुर्दशा मनमें करके याद।
छोड़ चले घर बार सब मन्दिर औ प्रासाद॥
लेते निहार थे लौट लौट सूखे नयनोंसे बार बार।
मन मार चले थे स्त्री बच्चे मानो करुणाकी वही धार॥
अपने कन्धोंपर भार लिये दुष्काल दैत्यसे हार लिये।
वे बेचारे पर वश होकर सूने पनका संसार लिये॥
वे छोड़ चले ऊँचे मकान वे छोड़ चले ऊँची दुकान।
वे छोड़ चले सामान सभी, वे छोड़ चले फिर स्वाभिमान॥
वे नहीं जिन्होंने अन्योंके सम्मुख निज हाथ पसारे थे।
वे इन कठोर आघातोंमें हा! फिरते मारे मारे थे॥
था हृदय विदारक आर्तनाद बच्चोंका भीषण चीत्कार।
हा एक एक दानेके हित करते थे सारे जन पुकार॥
अन्तरमें विषम विषाद लिये दुष्काल दैत्यकी याद लिये।
सूखी पलकोंपर जीवनकी उलझनका भीषण नाद लिये॥
कायाके लालन पालनका अपने मनमें कुछ ध्यान लिये।
जीवित कैसे भी शेष रहे इसका ही केवल-ज्ञान लिये॥
जो लोचन युगल सदैव रहे हर्षातिरेकसे ही गीले।
जो अंजन रंजित थे सुंदर उत्पलके तुल्य सदा नीले॥
वे सूख गये इस भाँति हाय! जैसे प्रसून मुर्झा जाये।
या पाटलकी पंखुड़ियोंपर घन ताप कहीं से छा जाये॥

दोहा—चले वहाँसे नारि नर, कंकालोंकी मूर्ति।
किसी तरह परदेशमें, करने इच्छित पूर्ति॥

नौ महलोंके रहनेवाले जिनके थे सुन्दर साज़ बने ।
राजाओंसे भी बढ़कर थे जिनके कि नाज़ अन्दाज़ बने ॥
जो चेहरे थे गुलाब केसे जो बड़े हठीले ताज बने ।
वे ही अब देखे जाते थे सहसा ही पीले आज बनें ॥
बच्चे कहते थे प्यास प्यास वुड्ढे कहते थे नाश नाश ।
तब अस्थि पुंजके झुरमुटमें करता अकाल था अट्टहास ॥
सूखे रूखोंकी पंक्ति खड़ी लगती ऐसी दुःखदाई थी ।
जानेवालोंका विरहमान दल दौलत मनों लुटाई थी ॥
सूखी थी सारी जमीं पड़ी सब ओर रेणु ही छाई थी ।
फिर गरम हवाके झोकोंसे सम्मुख तक वह उड़ आई थी ॥
मानो वियोग दुःखसे वसुधा अन्तरमें व्याकुल हो होकर ।
उनसे मिलनेको आती थी निज अंश उड़ा कर इधर उधर ॥
पथमें कितने पक्षी व्याकुल दुःख और क्लेशसे भरे हुए ।
मानों मनुजोंकी विरह आगसे झुलस पडे थे मरे हुए ॥
लूकी लपटें कर सायँ सायँ जब सभी तरफसे आती थीं ।
मानो अकालकी महा माया तक सासें वहां सुनाती थीं ॥

दोहा—जाते थे सब त्यागके, घरका माया मोह ।
मानो करती हो प्रजा, राजा का विद्रोह ॥
करुणाका मिश्रण जहां, शान्ति पूर्ण सप्रीत ।
दिया सुनाई कहीं से एक भैरवी गीत ॥

भैरवी—नगरी तुम चले क्यों त्याग! ।
हृदयमें किस वेदनका उदित होता राग ॥ नगरी—
है अभी यौवन तुम्हारा और बाकी श्वास ।
फिर भला किस हेतु तजते हो अभी से आश ॥
जान क्या तुम सब गये हो क्षणिक जीवन भार ।
आज जो कि उतावले हो चले तज घर बार ॥
ले गया कैसे सभी को संग संग विराग ॥ नगरी—

ये महल जो हैं तुम्हारे आज नभसे वात करते ।
पर्वतोंकी भी उंचाई जो कंगूरे मात करते ॥
क्या तुम्हारे विन भला शोभा यहां कुछ भी रहेगी ।
भूमि ही कैसे यहां की विरहका आत्तप सहेगी ॥
कालसे मजबूर हो क्या त्यागते अनुराग ॥ नगरी—
आह तुम दुर्भिक्ष त्रीड़ित, भूखसे अत्यन्त पीड़ित ।
हा तुम्हारे ही शिरोंपर यों तृषाका भार क्रीड़ित ॥
इसलिये उस ओर अपने, क्लेश अखिल महान् हरने ।
वाल वच्चोंकी व्यथा परदेशमें जा दूर करने ॥
तुम यहां से चलदिये करने महत्व विभाग ॥ नगरी—

दोहा—होकर वे अति मुग्ध मन सुनते थे यह गीति ।
वढ़ती जाती थी वहां एक मनोहर प्रीति ॥

मनमें विचार यह उठता था मिलकर सव साथ किधर जायें ।
पालन पोषण हित किसी भाँति कुछ काम वहां पर हम पायें ॥
सव लगे सलाह तभी करने क्या उचित हमें है अपनाना ।
यों एक साथ ही एक जगह है ठीक नही सवका जाना ॥
कुछ पश्चिम देशोंको जायें कुछ प्राचीके पथसे जायें ।
कुछ जायें दक्षिण ओर और कोई उत्तर दिशि अपनायें ॥
यों भिन्न भिन्न स्थानोंमें मित्रो! न क्लेश हमको होगा! ।
आपदा सहन करनेमें भी किंचित् न द्वेष हमको होगा ॥
जव त्याग चुके घरवार भला फिर दूर निकटकी ममता क्या ।
परदेश स्वदेश नहीं होता फिर दोनोंमें हो समता क्या ॥
इसलिये उचित है पृथक् पृथक् हम होकर सभी विदेश चलें ।
अपने प्यारे वच्चोंके यों हरने को सारे क्लेश चलें ॥
कुछ अंग देशकी ओर चलें कुछ वंग देशकी ओर चलें ।
कर संग ध्यान सत्कर्मोंका कुछ तो कलिंगकी ओर चले ॥
अव भिन्न समूह वनायें या टोलियॉ वनाकर वट जायें ।
फिर पृथक् पृथक् आशाओं को आशान्वित होकर हम जायें ॥

अपने अपने कर्मों द्वारा जाओ सब ओर विहार करो ।
दुष्कालरूप इस सागरसे जीवनकी तरणी पार करो ॥

सवैया—यों कर वंदना आपसमें वह अन्य प्रदेशको जाने लगे ।
पेटके पालन को किसी भाँति विदेश दिशा अपनाने लगे ॥
सूखे प्रदेश को पार किये हरे से कुछ क्षेत्र दिखाने लगे ।
याद सी आई तभी निज देशकी आँसू वहाँ भर आने लगे ॥

दोहा—आपसमें कर वन्दना, समुचित शिष्टाचार ।
चले पृथक् हो मौन सब, हरने दुःखका भार ॥

थे ओड जाति के कुछ उनमें जो दुःखित काठियावाड़ चले ।
मानो कुछ बंदी ताकतसे हों तोड जेलकी बाड़ चलें ॥
निर्धन बेचारे शूर वीर गोदीमें निज सुत लिये हुये ।
थे चले जा रहे विपदासे मानो मुँह सबके सिये हुये ॥
थे मौन सभी केवल थोड़ी पद चाप सुनाई देती थी ।
जिसमें उनके दुःख दर्दोंकी इक छाप दिखाई देती थी ॥
पर्वाह न थी है सूर्य कहाँ या कितनी पृथिवी तचती है ।
वे विना रुके ही चलते थे सोचते जान क्या बचती है ॥
बेचारे ओड दुर्दशामें थे किसी भाँतिसे धीर बने ।
चिथड़ोंसे लिपटे हुये सभी दुर्भिक्षोंकी तसवीर बने ॥
वे चले जा रहे धैर्य धरे सबके ही मुख कुम्हलाये थे ।
पैरोंमें छाले पड़े किन्तु फिर भी वे उन्हें बढ़ाये थे ॥
उनका शरीर था चूर चूर अंगोंमें एक शिथिलता थी ।
ऊपरसे पड़ती तीक्ष्ण धूप किरणोंमें लाती खलता थी ॥
फिर भी जो चढ़ता गिरता वह यह नियम सृष्टिमें है आता ।
उन्नति ही जिसकी देखी अवनति भी है वह दिखलाता ॥
उत्थान-पतनका क्रम जगमें सब ओर दृष्टिमें आता है ।
जो हँसता है इस समय कभी रोता वह ही दिखलाता है ॥

दोहा—इस बन्धनमें ही बँधे तजके निज अभिमान ।
शीघ्र पश्चिमामें गये स्वयं भानु भगवान ॥

नभमें थी नव लाली छाई हो गये गुलाबी दिङ्मण्डल ।
ज्यों अंधकार राक्षससे ही लड़ता पश्चिममें आखण्डल ॥
यह दृश्य देखकर एक चतुर आपसमें ही था यों बोला ।
सबका मन रंजन करनेको वर भाव काव्यमें यों खोला ॥
है स्वर्ण कलश सा सूर्य देव किरणोंकी रज्जु निराली है ।
बाँधा है भरनेको इसको यह पात्र पेयसे खाली है ॥
पश्चिम सागर तट महाकूप लालीसी जहां दिखाती है ।
संध्या पनिहारी वहीं अहो ! पानी भरनेको जाती है ॥

दोहा—लाल व्योम है होगया, जलमें उसका रंग ।
इठलाती अनुराग ले, चलती तरल तरंग ॥
सोती थी प्राची दिशा मौन आ करके उसे जगाया था ।
उस महा मानिनीको अरुणिम अम्बर द्वारा ललचाया था ॥
यह यौवन था रंगकी रलियाँ करता पर अब मन मानी है ।
पीछे उदयाचल पर्वतकी शय्यामें साफ़ निशानी है ॥
अब वही त्याग सन्मार्ग अहो नभकी छत पर आरूढ़ हुआ ।
हो गया मुग्ध अन्या पर ही हा स्वयं सूर्य भी मूढ़ हुआ ॥
जा रहा पश्चिमा मन्दिरमें इठलाता वह अभिमानी है ।
प्राचीने छोड़ा ला सुहाग हो गया लाल तब पानी है ॥

दोहा—काल चक्र यह प्रबल है, सदा बताते सन्त ।
रोक न पाता स्वयं रवि, निज उन्नतिका अन्त ॥
यह सोच शिथिल कर सब ममता भवके बंधन है तोड़ रहा ।
निज बालरूप बिलखते खगोंके मोह भावको छोड़ रहा ॥
सामायिक समय सुन्दर सन्ध्या कुछ देर आत्म चिन्तन करना ।
किरणोंका मुखावरण बाधा है, पापवायु संवर[ण] करना ॥
यह इसीलिये नव अम्बरके मण्डपके नीचे रुकता है ।
वन्दनको मस्तक नम्र बना धीरे धीरे से झुकता है ॥
परमेष्ठि ध्वनि खग-कण्ठोंसे सुस्पष्ट सुनाई देती है ।
सत्कर्म फलोंसे रंजित यह मेदिनी दिखाई देती है ॥

दोहा—है मदान्ध सा हो रहा, अहो वातका गात।
पश्चिममें है कर रहा, कोई मधु वरसात॥
है प्रकृति लिये अपने करमें वह विजय पताका लाल लाल।
दिन हार गया रजनीसे है कोई फैलाता तमो जाल॥
अब निशाचरी माया आई तन गया एक मण्डप विशाल।
सन्ध्या महारानी आती है कर अपना ऊँचा अरुण भाल॥
है वनी पश्चिमा मधुशाला रविका स्वर्णिम सुन्दर प्याला।
है आत्मोन्नतिकी सुखद सुरा पी होता मधुपी मतवाला॥
किरणें हैं साक़ी वनी हुई सारी जगतीको पिला रहीं।
चिड़ियाँ पीकर गातीं प्रसन्न मन लोक-लोकका खिला रहीं॥

दोहा—लाल सलिल मय नदी नद, लाये नवल सुहाग।
बॉट रही सन्ध्या वहां, पश्चिममें अनुराग॥
सामायिक हेतु सन्ध्या अब है वह सुखद आसनासीन हुई।
कमलोंमें भ्रमरोंकी अवली अब है समाधिमें लीन हुई॥
मिलनोत्सव है यह सोच प्रकृति कर्पूर चान्दनी बिखराती।
तारक हीरोंके गहने वह रजनी वालाको पहनाती॥
है मगन गगन पाकर वैभव यह लगन बडी सुखदाई है।
लग नहीं रहा है पता कहीं क्यों जग मग ज्योति सुहाई है॥
सुन वचन बचन पाया कोई ले हार चले उपहार लिये।
अम्बर अम्बरमें तारे वे ज्यौं मौन सितारे धार लिये॥

दोहा—सन्ध्या नव लाली नई, सन्ध्या नवला लीन।
जगती आतप हीन तू, जगती आतप हीन॥
सन्ध्या समय सरोज जब करता मुकुल दुकूल।
कलिका केलि सुकालमें वेला अलि प्रतिकूल॥
नभ जगका जो सम्राट् एक हो रहा अहो अब शक्ति हीन।
वारुणी समाराधन द्वारा होता दिनेश ही पराधीन॥
है हरी गई सम्पत्ति सभी, किरणोंका वैभव लिया छीन।
मानो दुष्कर्मोंका फल ही इसको करता इस भाँति दीन॥

या स्वयं स्वतप वन्हि द्वारा हो भस्म स्वयं मुर्झाता है।
विधवाके सिंदुर विन्दु सदृश जो जलमें डूबा जाता है ॥

पश्चिम समुद्रसे सलिल ले दिवाकरने
प्रथम हरिद्राका सुरंग सरसाया है।
प्राचीसे सुधाकरकी गुप्त सुधाधार आई
मिल दोनोंनेही रंग रोलीका बनाया है ॥
तारकोंके मिष आने वाले भक्त वृन्द यहॉं
पूजनका उनके ये साजसा सजाया है।
क्योंकि जपा सुमनों औ दाड़िमोंके कुसुमोंका
स्वर्णके कलश पास ढेरसा लगाया है ॥

दोहा—रवि स्वरूप घट सुराका पा कर असुर तमाम।
अति प्रमत्त हैं हो गये भूले निज धन धाम ॥

पश्चिममें होता उदित चन्द्र उस ओर दृष्टि भी चली गई।
ये जान गये हैं सुधा कलश लालचमें बुद्धि छली गई ॥
वह देखो तभी पश्चिमामें यह छिड़ा हुआ है घमा सान।
चिड़ियॉं चहक चहक कर ये हैं सुना रहीं वीरता गान ॥
मिलना तो नहीं किसीको कुछ, निष्कारण दौड़ लगाये हैं।
वस व्यर्थ कलहमें पगलोंने कितने दरियाव वहाये हैं ॥

दोहा—सव खलता जाने लगी, है अनुराग अनन्य।
ध्रुव ध्यानी भी कह रहे, सन्ध्या देवी धन्य ॥

पश्चिममें लाल पंकजों का किसने रस सरस वहाया है।
या सूर्यरूप मदिराका घर, यह असुरोंने छलकाया है ॥
या पश्चिममें प्राचीको यह तम दैत्यराज चल आया है।
जिसपर कि इन्द्रने क्रोधी हो रवि रूप सु वज्र गिराया है ॥
या दृश्य देख सुन्दर सुन्दर, कवि सुमन स्वयं हरपाया है।
किरणोंकी स्वर्ण लेखनी से यह काव्य नवीन वनाया है ॥
या स्नेह कलश लेकर करमें, सन्ध्या आई रस है भरता।
या सूर्य स्वयं इस समय वीर वारिधिके है सन्ध्या करता ॥

हैं व्योम मानसरमें निमग्न हो रहे अहो भगवान् भानु ।
या लोक ज्योतिका केन्द्र विन्दु यह सम्मुख ही जलता कृशानु ॥
या मणियों द्वारा बनी हुई यह देवोंकी गाड़ी उतरी ।
या पश्चिम देश जलानेको जाती विमानमें आग भरी ॥
है काल चक्र अति बलशाली यह बात समझमें आ जाती ।
तम तोम ध्वंसकारी सुतेजकी तरणि स्वयं डूब जाती ॥
इस भाँति काव्यके भेदोंमें शुभ सन्ध्याका वर्णन सुनते ।
थे चले जा रहे मौन सभी आशाका जाल नया बुनते ॥

दोहा—धीरे धीरे श्यामता छाई चारों ओर ।
डेरा डाला वहीं पर, श्रान्त सभी घनघोर ॥
शोधन कर कुछ भूमिका, नर नारी सस्नेह ।
सो कर विस्मृतसे हुए, समझ एक नव गेह ॥
इसी तरहसे कई दिन, कर करके विश्राम ।
गये काठियावाड़में पानेको कुछ काम ॥
शाम समय पाटणपुरी में पहुँचे वे जाय ।
जब कि वहां सब ओर से, गया अन्धेरा छाय ॥
देख देख कर वे सभी, श्रान्त ओड समुदाय ।
रोज़ीके वर लाभको, प्रभुसे रहे मनाय ॥
हुई रात गाढ़ी अहो, स्याही का सुप्रसार ।
तमचुर आदिकका मिला, विभावरीको भार ॥

नभकी नीली साड़ी सुन्दर, हीरक तारोंसे जड़ी हुई ।
फिर इधर उधर पच्चीकारी की वेल मनोहर पड़ी हुई ॥
रजनीने धारण किया उसे, सजनी बनकर वह आई है ।
औ मध्यभागमें मन्दाकिनिकी काँची नव सरसाई है ॥
कुछ देर वाद ही चन्द्र नाम उसका पति आनेवाला है ।
इस हेतु सजाया यों उसने यह सुन्दर साज निराला है ॥
नीलमकी थाली आसमान तारक अक्षत उसमें रख कर ।
पूजा करनेको जाती है यामिनी कामिनी अब द्रुततर ॥

कुछ देर वाद ही चाँदीका गोलासा इक नभमें आया ।
चाँदीका सुन्दर चूरासा जिसने पृथिवीपर विखराया ॥
शत शत धारोंसे वसुधापर वह हैं वर अमृत वरसाते ।
मानो पिपासितोंकी क्रमसे किरणोंसे प्यास बुझा जाते ॥
देवोंका अमृत भरा यही हीरक निर्मित है कलश कहा ।
पीनेके समय छलकनेसे यह उसका अहो प्रवाह वहा ॥
इस चन्द्ररूपधरसे कुछ जो अमृत सव ओर विखरता है ।
उन विस्तृत बूंदोंके द्वारा नभ दुग्धधारसे भरता है ॥
अथवा नभके नव दर्पणमें जैसा वतलाते हैं सत्कवि ।
यह किसी सुंदरीके मुखकी दिखलाई देती सुन्दर छवि ॥

दोहा—अथवा देवादिक वहाँ, करते हैं व्यापार ।
चाँदीका सिक्का वही, सुन्दर चन्द्र अपार ॥

या किसी पूर्ण कर्माका है, यशसा संचित साकार चन्द्र ।
जिसके समक्ष साधारण जन तारक स्वरूप हो रहे मन्द्र ॥
वसुधाने निजमुख दर्शनको, अथवा यह शीशा लगवाया ।
श्यामता रूप वन गिरियोंका जिसमें प्रतिचित्र स्वच्छ आया ॥
नीलमकी थाली में रक्खा या स्वच्छ दूधका प्याला है ।
दीनोंको देख दुःखी जिसको ऊपरसे फैला डाला है ॥
रजनी सजनी पर स्वामी की यह स्वच्छ कान्तिसी छाई है ।
सुन्दर खद्दर वाली साड़ी चान्दनी रूप पहनाई है ॥
या देख रुग्ण वहु जगतीमें मनमें है वहुत दया धारी ।
उनको नीरोग वनानेको ले चन्द्र-किरणकी पिचकारी ॥
सुन्दर सरोवरोंमे शाश्वत वह कुमुदोंको हर्षाता है ।
यों साथ साथ ही वसुधापर औषधकी सुधा वहाता है ॥
या दिखलानेको मानवको वह इसी रूपमें आता है ।
सव और भूमिमे वह अभितः यह श्वेत भस्म विखराता है ॥
या वेले और मालतीके सुंदर प्रसून वरसाये हैं ।
सव लिये श्वेतिमा रूप नया, चान्दनी व्याजसे छाये हैं ॥

या शरत्कालकी सुषमाका है हुआ लोकमें शुभागमन ।
उसके आनँदमें बिखराती है प्रकृति कपूर और चन्दन ॥

दोहा—नवल-विमल आभा लिये, अम्बर धवल ललाम ।
विभावरी वरभावसे, जाती शोभा धाम ॥
बीती रात सुषुप्तिमें, प्रातः हुये प्रबुद्ध ।
अगले दिन आगे बढे, करने जीवन युद्ध ॥

पाटण नगरीमें कर प्रवेश देखा उसको शोभा-धायक ।
अत्यन्त स्नेहसे युक्त उसे सबने जाना श्रीपरिचायक ॥
पूछने वहाँ ही लगे यहाँ मिल जाये कोई कार बार ।
या पेट पालने हेतु कहीं मिल जाये कोई रोज़गार ॥
इस भाँति घूमते हुए वहाँ कुछ नागरिकोंने बतलाया ।
उत्तरमें बनता है तलाव उस जगह काम हैं बहु आया ॥
यह ही सलाह हम सबकी है सबके सब वहीं चले जाओ ।
अपने अपने लायक मिलकर सब काम वहाँ पर ही पाओ ॥
इतना सुनकर वे ओड सभी अपने मनमें अति हरषाये ।
फिर याद आगई जन्मभूमि कुछ दुःखके आँसू भरलाये ॥
वस्त्रांचलसे कर स्वच्छ उन्हें बच्चोंको धैर्य दिलाते से ।
दुःख भूख प्यासका गया सोच कुछ मनकी कली खिलाते से ॥
पति-पत्नी गण आबाल वृद्ध आपसमें करके कुछ सलाह ।
चलदिये सरोवर ओर सभी वे पूँछ वहाँ की ठीक राह ॥

दोहा—कुछ हर्षित कुछ दुःखित भी, कुछ विस्मित सब ओड़ ।
आये थे इस भूमिमें कितने नाते तोड़ ॥
यदि उनकी कुछ यादका, था अन्तरमें भार ।
तो वह हल्का हो गया, पा रोज़ी उपहार ॥
ठीक जगह पर जा तभी अधिकारीके पास ।
विनय सभी करने लगे, कर रोज़ीकी आश ॥
माननीय ! हम दूरसे, तज निज मालव देश ।
आये श्रीमन् ! के निकट सहकर कितने क्लेश ॥

वहा महा दुष्काल है, सूख गया है नीर ।
भूखोंसे मरने लगे, हो कर सभी अधीर ॥
हैं तभी आपकी सेवामें हम सभी यहाँ चलकर आये ।
इतना कहते कहते सबके लोचन पानीसे भर आये ॥
इन व्यथा भरे कुछ शब्दोंसें अधिकारी सब कुछ जान गया ।
सच्चे दुःखोंके मारे हैं वह क्षणभरमें पहचान गया ॥
भूखे बच्चोंको देख अहो यह आँसू उमडे आते हैं ।
इनकी सुन कष्ट कहानीको दिलके टुकडे हो जाते हैं ॥

सवैया—काल करालके सिन्धु महान्से हा ! नही पार है जा सका कोई ।
है कितने दिन जीना यहां इसका भी पता न लगा सका कोई ॥
जीवनमें पराधीन है मानव बन्दी न हाय ! छुडा सका कोई ।
माया भरे इस विश्वके जाल को छिन्न न प्यारे बना सका कोई ॥
प्राणी अहर्निश घूमता है अपने सुख दुःखका भार सम्हाले ।
औ अपने अनुकूलही पुण्य या पापका है उपचार सम्हाले ॥
जीतने को कोई आगे बढ़ा हुआ है कोई अन्तिम हार सम्हाले ।
खोजता सत्य प्रकाश नहीं रहता है मृषा उपहार सम्हाले ॥

दोहा—सोच दया पूर्वक यही, करके पूर्ण विचार ।
अधिकारी बोला मृदुल, स्वच्छ सांत्वना सार ॥
जीवनमें सुखदु.खका चक्कर आठों याम ।
इससे घबराते नहीं वीतराग निष्काम ॥
पर हम तुमसे जीव जो, नहीं जानते त्याग ।
होते इसमें दुखित हैं, कारण केवल राग ॥
फिर भी गृहस्थमें पानी औ आहार चाहिये मानवको ।
प्राणीका जीवन है इसमें सुख सार चाहिये मानवको ॥
होता यह दुःखित हृदय मेरा, सुनकर तव करुण कहानी है ।
इसलिये राह रोजीकी भी तव हेतु मुझे अपनानी है ॥
सम्मुख विस्तीर्ण सरोवर यह बनता अतीव सुखदाई है ।
नृप आज्ञासे निर्माण हेतु कितनी ही भीड़ बुलाई है ॥

मालव वाले इस विद्यामें अति कुशली देखे जाते हैं।
इसलिये यहाँ के अधिकारी कारीगर बहुत बुलाते हैं॥
यह स्फटिकशिलायें सुन्दर हैं वह शोभित है काला पत्थर।
यह क़लई चूना आदि सभी निर्माण हेतु आया द्रुततर॥
इन सभी साधनोंके द्वारा, सुन्दर सर यहां बनाना है।
मत चिन्ता करो अधिक कलसे ही तुम्हें कार्यपर आना है॥

दोहा—यह सुनकर मस्तक झुका, महा स्नेह से जन्य।
अधिकारीसे भक्तियुत बोले श्रीमन्! धन्य॥

जीवनमें कभी न भूलेगा जो यह उपकार तुम्हारा है।
परिपूर्ण दयासे ओत प्रोत हमको उपहार तुम्हारा है॥
हम भी अपने अन्तस्तलसे सच्ची सेवा कर जायेंगे।
मालिक! हम खाकर अन्न पूर्णतासे उसको भुगतायेंगे॥
कल प्रातःसे ही महामान्य! हम कार्य शुरू कर देवेंगे।
मानस सरसी शोभा इसमें हम यथा शक्ति भर देवेंगे॥
निर्माण योग्य साधन समस्त हैं यहाँ पूर्ण ही विद्यमान।
अव हम भी पूर्ण पराक्रमसे रक्खेंगे इसका सदा ध्यान॥
श्रीमन्! यह महासरोवर भी अमृतका प्याला ही होगा।
रचनाके वाद देखियेगा सव कार्य निराला ही होगा॥
यह सुन अधिकारीने उनको वह जगह ठीकसे दिखलाई।
तालाव योग्य लख भूमि सुघर वह इनके भी मनमें भाई॥
तब अधिकारीने एक ओर वतलाई इन्हें दे वास-शाला।
इन लोगोंने भी वहीं वाल वच्चोंसे युत डेरा डाला॥
सन्तोष पूर्ण कुछ थोड़ासा भोजन करके आराम किया।
मानो इतने दिनके दुःखने अव हो सुदूर विश्राम किया॥

दोहा—यह जीवन तू जीव नव, जीवन जीवन धार।
नाशमान् सामान यह, तू समान सम प्यार॥

दोहा—पुलकित तन अति मुदित मन, मालव वासी ओड ।
सर रचना हित चल दिए, सारी चिन्ता छोड ॥
एक दूसरे से यही, कहते सोच विचार ।
वन्धु ! देर है हो रही, जल्दी हो तैयार ॥

इनमें था त्रिक्रम ओड एक, अति चतुर वली मन सावधान ।
सुन्दर सुशील शोभा आगर, श्यामल वादलसा राजमान ॥
मरकत सम छविमय मुखमण्डल, लावण्य सिन्धु लोचन विशाल ।
मानो नीलोत्पल पर बैठे, दो भ्रमर खोल पंखुड़ी जाल ॥
दृढ सन्धि वन्ध आयत युग भुज, उर पूर्ण तरुणता का आकर ।
मानो कोई वनका हाथी, आया गिरि गव्हर से वाहर ॥
उस वज्र तुल्य वक्षःस्थल पर, झलका वलका प्रवल रूप ।
था श्रमिक किन्तु लगता था, वह साहस प्रदेशका स्वयं भूप ॥
सागरकी नीर राशिके सम, वह स्वयं सरसने वाला था ।
मानो कोई नभका, वादल अति शीघ्र वरसने वाला था ॥
मस्तक पर झलका करती थी, निज सूक्ष्म निरीक्षण की रेखा ।
मानो शिवसे वरदान रूप, मिल गई इसे शशिकी लेखा ॥
घनश्याम रंग जो एक नया, रस रंग लिए था छहराया ।
नव शस्य श्याम भारत भू में, यमुनाके जल सम लहराया ॥
दुष्काल घटामें त्रिक्रम का, सुविचार न अणु भी लुप्त हुआ ।
निज तीक्ष्ण चमकसे अवरमें, हीरक न कभी है गुप्त हुवा ॥
त्रिक्रम था विक्रमका स्वरूप, श्यामल तमाल सा राजमान ।
मानो हिंसाको त्याग सिंह, वनमें तप करता सावधान ॥

उन सव ओडोंमें अधिक चतुर,
अति वली वुद्धिका सागर था ।
सवके हृदयोंमें परम शान्तिका,
दायक लोक उजागर था ॥

दोहा—त्रिक्रम उस समुदायमें, था अनुपम गुणवान ।
जिसकी संगति का सभी, ओडों को अभिमान ॥

घनमालमें बिजली जैसे, नभमें राकापति कान्ति धाम ।
नीली समुद्र जलधारामें, जैसे मौतिक माला ललाम ॥
उपवनमें वसन्त ऋतु जैसे, पावन प्रयागमें सरस्वती ।
या शरद रात्रिमें राजमान, ज्योत्स्नाकी सुषमा सारवती ॥
शैवाल जालमें प्रथम सूर्यकी, किरण अगर रखदी जाए ।
या नीलम खचित प्रणालीमें, गंगाकी एक लहर आए ॥
या स्वच्छ कसौटी पर हो खिंची, शुद्ध कांचन रेखा ।
था श्याम पट्टिका पर सुवर्ण, वर्णोंसे पुरावृत्त लेखा ॥
नभमें जैसे शुभ छाया पथ, उत्पलमें नव मकरन्द रूप ।
काले पर्वतमें प्रतिबिम्बित, संजीवनिकी छाया अनूप ॥
जैसे स्वदेशके भक्तोंमें, निज देश धर्मकी भक्ति वसे ।
सेवा व्रत ले वलि देने वालोंमें, सुकर्म की शक्ति लसे ॥
प्राणोंमें यौवन, यौवनमें साहस जिस भाँति सबल लसता ।
जैसे तपस्वियोंके उरमें, अनुपम आध्यात्मिक वल वसता ॥
वैसे ही विक्रमके उरमें, प्रतिक्षण प्रकाश करने वाली ।
जशमा नाम्नी उसकी नारी, थी कीर्ति ज्योति भरने वाली ॥

अपने प्रिय पतिके अन्तरमें,
वह रूपवती ऐसे रहती ।
जैसे रस सिद्ध सुकवियों में,
कविताकी रस धारा बहती ॥

दोहा—पावन चरित पतिव्रता, पतिप्रिया गुणधाम ।
जशमा ज्ञान उजागरी, रमणी रत्न ललाम ॥

उसका अनुपम छवि धाम वदन, शशि था या अमृत पूर्ण प्याला ।
बैठती जहाँ वह होता था, स्वयमेव वहाँ पर उजियाला ॥
उसके शरीरकी स्वर्ण कान्ति मय, किरणें जब आ मिलती थीं ।
तम पूर्ण अमावस्या में भी, तब कमलावलियाँ खिलती थीं ॥
मस्तक पर काली जलदावलि, या स्निग्ध कुटिल अलकावलियाँ ।
मानो सुवर्णमय नीरज पर, संचित नीलोत्पलकी कलियाँ ॥

होते हैं बाल वक्र इससे, वेणी वन्धन कर लेती थी ।
कुटिलोंको वन्दी कर वशमें, रक्खो यह शिक्षा देती थी ॥
वेणी सुपृष्ठ पर रहती थी, यह सोच न मुँह ढक जाए कहीं ।
वालोंकी बदलीमें घिर कर, यह पूर्णचन्द्र छिप जाए नहीं ॥
जो अधिक सामने रहता है, उस पर सनेह बढ जाता है ।
जैसे तरुवर लतिकाओंका निज तन पर भार उठाता है ॥
वैसे ही कुटिल कुन्तलोंके खल गुण न हृदयमें गड़ जाएँ ।
इसलिए पीठ पीछे उनका बन्धन करती दाएँ वाएँ ॥

उसके मस्तक पर सत सुहागका,
सुन्दर विन्दु विलसता था ।
या स्वर्ण शिखर पर ज्योतिर्मय,
विजयी नवदीपक हँसता था ॥
सम्मुख प्रकाश वह करता था,
उजियाली फैली रहती थी ।
जिससे वालोंकी अंधियाली,
पीछे छिप वन्धन सहती थी ॥

दोहा—ऋतु-पतिमें उदयाद्रि पर, लसित पूर्ण नव इन्दु ।
या जगमाके भाल पर, लाल सिन्धुरी विन्दु ॥

मस्तक पर स्वामीका सुहाग, अनुराग विन्दु अति प्यारा था ।
नयनांजन सम शनि ग्रह समीप, या शोभित मंगल तारा था ॥
या नेत्र नील मणियों पर था, वह पद्मराग मणि अति सुन्दर ।
या विकसित था लघु लाल कमल, उस रूप सरोवरके अंदर ॥
लावण्य सिन्धुमें विद्रुमका, या वह जल यान सुहाया था ।
या पापी हृदय जलानेको, पावकका व्यूह रचाया था ॥
या अनारका था फूल धरा, चन्दन निर्मित वातायन में ।
या स्वर्ण पत्र थी पतिता नव, वीरवधूटी काननमें ॥
निज प्रियतमकी झांकी पाकर, दिन प्रतिदिन नयन निहाल हुए
पाटलसे अधर अधिकतर थे, अनुराग प्राप्त कर लाल हुए ॥

अर्थात् प्रकृतिने सकल रूप, औषधियोंका आसव ढाला।
तब कहीं बनी थी रूप, शशि जशमा त्रिक्रमकी उर माला॥
उपमा विहीन सुषमा लेकर, जशमा स्वामीकी मन भाई।
ओठोंमें लिए स्वरूप विभव, इतिहास नया रचने आई॥
दोनों ही दम्पति सदा मिलित, आचरण धर्मका करते थे।
मानोरति, रति पति एक साथ, सुर उपवन मध्य विहरते थे॥

जशमाने श्रम हित निजपति को,
जब एकाकी जाते देखा।
तब कुछ गंभीर हृदय पर भी,
आई आकुलता की रेखा॥

दोहा—करुणा विगलित विनय युत, जशमा यश आगार।
निज पतिसे बोली मधुर, वाणी अर्थ प्रसार॥

(जशमा)

हे नाथ! साथ मै भी चलकर, श्रममें कुछ हाथ बटाऊंगी।
मै अर्धांगिनी-सदा सच्ची, ही अर्धाङ्गिनी कहाऊंगी॥

(त्रिक्रम)

त्रिक्रम बोला यह सच है पर, अति कठिन कार्य सरकी रचना।
है परम असंभव वहां देवि! मट्टी या कंकड़से वचना॥
तुम कोमल हो फिर यह शिशु भी, जो निज नयनोंका तारा है।
केवल हम तुमको नहीं वरन् सबको अन्तरसे प्यारा है॥
उसका हित सोच मुझे लगता, तव साथ गमन कुछ अनुचित है।
मै एकाकी जा कार्य करूं, इसमें ही निहित आत्महित है॥
यह सुन जशमाके अन्तरकी, गंभीर भावना भी डोली।
फिर मधुरिम स्वरमें विनय सहित, वह अपने स्वामीसे बोली॥
हे नाथ! उचित अनुचित क्या है? यह भेद न अधिक जानती मैं।
प्रतिपल पतिके संग रहनेमें, अपना कल्याण मानती मै॥
इस लिए प्रार्थना करती हूं, शिशु मिष न मुझे प्रियतम! छलिए।
मै आराधिका तुम्हारी हूं, निज साथ मुझे भी ले चलिए॥

दो मिलकर कार्य करेंगे तो,
निश्चय श्रम कुछ हलका होगा।
फिर साथ रहेगा बच्चा भी,
मन मुदित हास झलका होगा॥
है जीवन जहाँ प्रवाह वहाँ,
प्रिय पवन साथ उसकी गति है।
लय जहाँ वहीं पर यति होती,
मन जहाँ वहीं रहती मति है॥

दोहा—पत्नीके सुनकर प्रथम, वचन भाव गंभीर।
कुछ क्षण सोच विचार कर, बोला त्रिक्रम वीर॥

यह सच है किन्तु प्रियतमे! तुम, इस पर विचार पहले करलो
होंगे कितने ही लोग वहां, इसका भी स्वयं ध्यान धरलो॥
हैं मनोवृत्तियाँ भिन्न न जाने, क्या कोई सोचे मनमें।
इसलिए तुम्हारा श्रमके हित, चलना न उचित है जन घनमें॥

(जशमा)

जशमा बोली शशि बिना कभी, क्या कुमुदी को खिलते देखा।
कब कहाँ कमलिनी सूर्य बिना लाई विकासकी मृदु रेखा॥
फिर बिना आपके मैं स्वामिन्! किस भाँति यहाँ रह सकती हूं।
तव कर पल्लव की छाया में, सुख दुःख समस्त सह सकती हूं॥
क्या दृष्टि किसीकी कर सकती, अपने मनमें यदि पाप नहीं।
फिर स्वयं आप हैं साथ इसीसे कुछ भय या अनुताप नहीं॥

(त्रिक्रम)

त्रिक्रम बोला मानता नित्य मुझ पर तव प्रीति पुनीत सदा।
क्षण भरका विरह असह्य तुम्हे, यदि हो जावे कुछ यदा कदा॥
पर तुम गृह स्वामिनि हो घर पर, रहना ही काम तुम्हारा है।
एकाकी जाकर कार्य करूं, मैंने तो यही विचारा है॥
यद्यपि निश्चित है हम दोनों दो देह और हैं एक प्राण।
दोनोंका दोनोंके ऊपर निर्भर है पारस्परिक त्राण॥

फिर भी समाज व्यवहार तुम्हें, घरमें रहना सिखलाता है।
बाहर जाकर श्रम रत रहना, तो पुरुषों को ही भाता है॥

दोहा—जशमा बोली क्या भला, सीखें हम व्यवहार।
छीन लिए जब नरोंने, हैं समस्त अधिकार॥

अच्छा जैसी प्रियकी इच्छा, मेरा तो कुछ अधिकार नहीं।
अधिकार हीनका भी होता, क्या सच्चा कभी विचार कहीं॥
उत्तम विचार है यदि नारी, बाहर न निकलने पाएगी।
तो कभी नहीं अधिकार बुद्धि, उसके जीवनमें आएगी॥
जैसे जीवन भरका बन्दी, या जैसे बचपनका अंधा।
जानेगा नहीं सगुण, निर्गुण तो कहाँ लगाएगा कन्धा॥
जड़ता की घनमालाएँ ही नारी समाज पर तनी रहे।
यह युग युग तक निज जीवन भर, मनुजोंकी दासी बनी रहे॥
अधिकार छीन वनिताओंका, अब अबला उन्हें बनाया है।
घरके विषयोंमें फँसी रहे, इससे विलास सरसाया है॥

(त्रिक्रम)

क्या कहती हो पुरुषोंने, अधिकार तुम्हारा छीना।
नित नव अत्याचारोंसे, कण्टकित कर दिया जीना॥
यह देवि ! तुम्हारा भ्रम है, किसने तुमको बहकाया।
तन-मन-धन-धाम नरोंका, तुमने ही तो अपनाया॥

(जशमा)

लौकिक व्यवहारोंका भी, अनुभव न बताया हमको।
केवल दासता सिखाकर, बन्दिनी बनाया हमको॥
दासीकी भाँति सदा ही, करतीं घरकी रखवाली।
केवल विनोदका साधन, कहनेको हैं घरवाली॥

(त्रिक्रम)

बाहरकी विपदाओंसे, घरमें रख तुम्हें बचाया।
सौंपा सहर्ष सब तुमको, जो श्रमसे सदा कमाया॥
क्या गृह विनोद में तुम भी, कुछ मोद नहीं पाती हो।
लालोंसे गोद सजातीं, फिर भी रूठी जाती हो॥

(जशमा)

लालोंका लालन-पालन, क्या खेल आपने जाना।
बाहर आने जानेमें, विश्वास नहीं क्यों माना ॥
विद्यासे वंचित रखकर, कहना पैरों की जूती।
क्यों यहा बोलती है, पौरष की प्रति क्षण तूती ॥

(त्रिक्रम)

पतिको परमेश्वर समझो, सद्ग्रन्थोंने बतलाया।
पातिव्रतकी महिमाको, सब शास्त्रोंने समझाया ॥
किन किन बातोंमें समता, तुम करसकतीं सुकुमारी।
हम वीर धीर वर नर हैं, फिर क्या बेचारी नारी ॥

(जशमा)

शास्त्रोंने मिलकर हमको है अर्धाङ्गिनी बनाया।
सब अधिकारोंमें आधा, अधिकार सर्वदा पाया ॥
सीखें तो पति भी पहले, अपना व्रत पालन करना।
नव जागृतिके इस युगमें, नवजीवन जागृति भरना ॥

(त्रिक्रम)

किन बातोंमें भूली हो, तुम तो अति भोली भाली।
तुम में कितना कम बल है, अबला कहलाने वाली ॥
संकटमें फँस जाओगी, जीवन पथ कण्टक मय है।
रहकर अधीन हमारे, क्या तुम्हें कष्ट है भय है ॥

(जशमा)

जो जो है किया नरोंने, हमने सब कर दिखलाया।
इतिहास उठाकर देखो, पुरुषोंको भी सिखलाया ॥
क्या परालम्बसे बढ़कर, दुनियामें कोई दुख है ?।
जीवन स्वतन्त्रता में है, बस स्वावलम्ब ही सुख है ॥

(त्रिक्रम)

परिणय की प्रेम प्रतिज्ञा, क्या भूल गई हो सारी !।
सम्बन्ध तोड़ती हो जो, यों होकर हमसे न्यारी ॥

निश्चय है निपट निराली, मोहिनी तुम्हारी माया।
हम भूले रहे उसीमें, पर कुछ भी भेद न पाया॥

(जशमा)

वह प्रणय प्रतिज्ञा अपनी, तुम भी तो यों मत भूलो।
हर कर सर्वस्व हमारा, मत विजय गर्वमें फूलो॥
मनुजों ने महिलाओं पर क्या है कम जाल बिछाया।
पट-भूषण-शृंगारोंके फंदेमें उन्हें फँसाया॥

(त्रिक्रम)

हों इस गृहस्थ जीवनके, दोनों समान अधिकारी।
दोनोंके ऊपर जाएँ, हम दोनों ही बलिहारी॥
दम्पति स्वरूपमें दोनों, गृह सुख-सम्पत्ति बढाएँ।
तुम हृदयेश्वरी कहाओ, हम हृदयेश्वर कहलाएँ॥

(जशमा)

चाहे बिजलियाँ गिरें या, हों विषम हमारी राहें।
विचलित न लक्ष्यसे होवें, आ जीवन धर्म निबाहें॥
श्रम करके कठिन समयमें, दुखमय दुर्दिन सब तोडें।
जन-राष्ट्र-कर्मसेवामें करते न कभी मुख मोडें॥

(त्रिक्रम)

निज जनपद मालव छोड़ा, पाटनमें चलकर आए।
निज जन्म भूमिसे बिछुड़े, पर अश्रु नहीं बरसाए॥
श्रमजीवी होकर ही हम, सब काम करेंगे अपना।
इसमें सुखकी क्या आशा, जीवन दो दिन का सपना॥

(जशमा)

वीरता और साहससे,
स्वामिन् सब कार्य बनाएँ।

पुरुषार्थी या उत्साही,
सफलता सब जगह पाएँ॥

चेतक हयकी स्मृति करलें,
उत्साह सवल आता है।
धीरता वीरता द्वारा,
संसार बदल जाता है ॥

(त्रिक्रम)

जो कर्म वीर हैं आगे,
वे धर्म वीर कहलाते।
फिर धर्म वीर ही बढ़कर,
हैं ज्ञानतत्वको पाते ॥

वीरता और कर्मठता है,
तत्व महा मानव का।
सत्कर्म हीन मानव तो,
है सदा उपेक्षित सबका ॥

(जग्गमा)

गीत—वही सच्चा वीर है, वही धर्मवीर है,
भाग्य पर जो बैठे नहीं, वही कर्म-वीर है।
आपसी अदावटें, राहकी रुकावटें।
ले घटाएँ आफतें, सामने जो आ डटें ॥
फिर भी जो कँपता है नहीं, कामसे छिपता नहीं,
अपने वक्तका वही, वल भरा समीर है ॥
वही सत्य वीर है, वही धर्म-वीर है।
भाग्य पर जो वैठे नहीं, वही कर्म वीर
लक्ष्यसे डिगे न जो, शत्रुसे भगे न जो।
माया और मोहके, प्रेममें पगे न जो ॥
देखकर बुरोंको, खुद बुराई मैं लगे न जो।
वो ही अमृत धार है, वो ही मधुर नीर है ॥
वोही सत्य वीर है, वही धर्म वीर है।
भाग्य पर जो वैठे नहीं, वही कर्म वीर

कोई मधुर थाल दे, कोई खींच खाल ले,
कोई नोचे पेशियाँ, कोई प्राण डाल दे।
ठोकरें लगें कहीं, कहीं कोई सम्हाल दें,
प्राणिमात्र के लिए, एक वही क्षीर हैं ॥

वही सत्य वीर है, वही धर्म वीर है।
भाग्य पर जो बैठे नहीं, वही कर्मवीर है ॥

विरही कभी आके कहीं, आँसुओंसे सींच जाए,
और कभी कोई सर्वदाको आँखें मींच जाए।
कोई साँस खींच जाए, कोई जल उलीच जाए,
फिर भी जो उदास हो, न वही नदी तीर है ॥

वही सत्य वीर है, वही धर्म वीर है।
भाग्य पर जो बैठे नहीं, वही कर्म वीर है ॥

गीत—कर्मवीर है वही तो कर्मवीर है।
जिसका कभी न काम कोई बीचमें रुकता,
जिसका न ज़िंदगीमें कभी झण्डा है झुकता।
जो दूसरोंका भूलके न मुँह निहारते,
जो पुण्यकी न पापसे हैं बाज़ी हारते।
जिनके सितारे हाथमें सागर बना ज़मीं,
मरुथलमें जिसके क़दमोंको है चूमती नमी।
कर्मवीर है वही तो कर्मवीर है ॥

वे खुदको बदलते तो ज़माना है बदलता,
उनको ही देख बालूसे भी तेल निकलता।
चलते वे भूमिके समान, आसमान में,
मस्तक अनेकों झुकते सदा उनके मानमें।
जो हैं अडिग लगे सभी हैं, उनके ध्यान में,
करते परिक्रमा सितारे, ध्रुवके ध्यानमें।
कर्मवीर हैं वही तो कर्मवीर हैं ॥

तलवारों औ अगारों पे चलते हैं जो अभय,
उपदेश दूसरोंके लिए जिनका है प्रणय।
जो आगे बढ़के पैर हैं, पीछे नहीं धरते,
जो झूठे मानके ही हैं, पीछे नहीं मरते।
बढ़ते हैं आगे शूलों को भी फूल बनाकर,
फौलाद को भी मोम और तूल बनाकर।
कर्म वीर है वही तो कर्मवीर है॥

झाड़ी या झंकड़ोंसे जिसे है न वास्ता,
पर्वत भी हटके देता जिन्हें अपना रास्ता।
भूकोंके लिए आपही झुकते विटप सफल,
तपती धराको देखके झुक जाते हैं बादल।
निर्झर पहाड़ चीरके तेज़ीसे निकलता,
आता है चन्द्रमा तो जगत् शान्तिमें ढलता।
कर्म वीर है वही तो कर्म वीर है॥

चढते हुए दिनेशकी क्या शक्ति देखना,
बुझते हुए चिराग़की क्या भक्ति देखना;
यौवनमें मनकी क्या कहीं अनुरक्ति देखना।
उमड़े उदधिमें क्या उफान व्यक्ति देखना॥
थोडी सी आँचमें जो मोम सा न पिघल जाए,
थोड़ेसे जलसे लवणकी तरह न जो गल जाए।
कर्म वीर है वही तो कर्म वीर है॥

जब आर्त दीन पीड़ितोंका होवे हाहाकार,
जब देश और जातिमें बलिदानकी पुकार।
जब जन्मभूमि शीश दान माँग रही हो,
जब सज्जनोंके रक्त की धारा सी बही हो।
तब पहले समर भूमिमें जो पैर बढ़ाता,
सबसे प्रथम जो अपना शीश भेंट चढ़ाता।
कर्म वीर है वही तो कर्म वीर है॥

गीत—भयसे करता त्राण वही तो वीर कहाता,
देखकर यह सारा संसार, जहाँ पर मायाका शृँगार,
और तनका मिथ्या व्यवहार, जीत भी जहाँ हो रही हार।
शत्रुसम जो आत्माके लिए, उसीसे होता हरदम प्यार,
जहां मन सरस सरोवर त्याग, खोजता आतपमें जलधार।
प्राप्त कर औरोंसे अपकार, करे जगका सदैव उपकार,
उसीका होता बेड़ा पार, वही तो वीर कहाता।
भयसे करता त्राण वही तो वीर कहाता ॥
कुहुकती कोयल जिसके लिए, शक्ति भी झुकती जिसके लिए,
नदी है रुकती जिसके लिए, ईर्ष्या लुकती जिसके लिए।
न जिसको कोई मंजिल दूर, विघ्न सब होते चकना चूर,
अटकनेकी उलझन हो व्यर्थ, स्वयं उड़कर बनती काफ़ूर।
काकको सुन्दर काय सुपर्ण, बनाए जो मट्टीको स्वर्ण,
शूल संग जोकि खिलाता फूल, वही तो नीर कहाता।
भयसे करता त्राण वही तो वीर कहाता ॥
नम्रतामें याचकके तुल्य, दानमें कल्पवृक्षका रूप,
पिपासित जिसे अर्धक्षण देख, स्वयं आता समीप है कूप।
लोभसे हीन क्षोभसे हीन, तीव्र जैसे वीरोंका बाण,
हथेली पर रख अपने प्राण, जो कि करता औरोंका त्राण।
कटाकर सीस जोकि मुस्काए, न फिर भी मस्तक झुकने पाए,
सदा गतिशील साहसी वह, समीरसा वीर कहाता।
भयसे करता त्राण वही तो वीर कहाता ॥

दोहा—अपने जीवनमें स्वयं, भर उत्साह अमन्द।
चले सरोवर तीरको, मिल दम्पति सानन्द ॥
आपसके समालाप द्वारा, पति पत्नी मिल तैयार हुए।
शिशु गोद लिए जिसके ऊपर, दोनोंने निज मन वार दिए ॥
द्रुत गति चलकर सबके सँग ही, पहुँचा त्रिक्रम भी सपरिवार।
तालाब जहाँ बनता था वह, पद देख लिया अच्छी प्रकार ॥

त्रिक्रम बोला हम श्रमजीवी, निज जीवनका कण कण श्रम है।
स्वाभाविक ही सद्वृत्ति जहाँ, वह श्रेयस्कर वह अनुपम है॥
हम आए हैं जिस कार्य हेतु, उसमें न समय खोना होगा।
मैं मट्टी खोदूंगा डट कर, फिर तुम्हें उसे ढोना होगा॥
जशमा बोली हम सावधान, होकर निज धर्म निबाहेंगे।
यदि सफल कार्य होगा तो, ये अधिकारी स्वयं सराहेंगे॥
मैं कार्य करूंगी लगातार, संशय न स्वल्प बतलाती हूं।
पर पहले इस बच्चे को भी, सुखसे इस ओर सुलाती हूं॥
त्रिक्रम बोला यह वट सुन्दर, पालना इसीमें लटकाओ।
सुन्दर समीरके झोकोंसे, बालकको अपने खिलवाओ॥

मुख देख लालका साथ साथ,
हम उसपर बलि बलि जाएँगे।
होंगे प्रसन्न उत्साही तो,
मिल दुगना कार्य बनाएँगे॥
सब श्रमिक ओड एकत्र हुए,
जो नियत समय पर थे आए।
अधिकारी गणने प्रथम सभी को,
जी भर लड्डू खिलवाए॥

दोहा—प्रातराश को प्राप्त कर, परम प्रेमसे जन्य।
निज अधिकारी वर्गको, कहते थे सब धन्य॥

इस मधुर भोगसे श्रमिकोंको, मनमें आनन्द अमन्द हुआ।
अति श्रमसे काम लगे करने, जिससे कि स्वेदका स्पन्द हुआ॥
कोई सरकी सीमाओंका, प्रतिदिश नव चिन्ह बनाता था।
कोई समीप ही सूत्र लिए, परिमाण नापता जाता था॥
कोई गेरु खड़िया लेकर, खींचा करता सीधी रेखा।
कोई निम्नता उच्चता का, करता सब ओर घूम रेखा॥
कोई मट्टीको खोद खोद, टोकरियोंको भर देता था।
दूसरा उसे फेंकता दूर, फिर और हाथमें लेता था॥

कोई फ़ावड़ा लिए करमें, था इधर उधर घूमा करता।
जिस ओर विषमता आती थी, समता से उसे स्वयं भरता॥
कुछ चिन्हित मर्यादाओंमें, मट्टी सम्मिलित डालते थे।
दृढ कर्म निरत वे श्रमिक वृन्द, मानो श्रम स्वयं ढालते थे॥
मध्यान्ह समयमें उन्हें एक, घटिकाका था अवकाश मिला।
सबने भोजन जल पान किया, फिर नवोत्साह का फूल खिला॥

द्विगुणित गतिसे पा नवस्फूर्ति,
अपने कार्योंमें लगे सभी।
स्वामी की आज्ञा विना वहाँ,
थे कार्य ज्योति में जगे सभी॥
इस साहससे इस द्रुत गति से,
वे लगे कार्य में ओड़ सभी।
मानो किसका हो अधिक काम,
यह लगा चुके थे होड़ सभी॥

दोहा—परम परिश्रमसे सभी, मिल करते थे काम।
खेद विन्दु झलके मनो, मुक्ता लसित ललाम॥

इस भाँति अनवरत श्रम करते, दिन ढला भानु तप मन्द हुआ।
सन्ध्या आई विश्राम हेतु, सब कार्य यथा विधि वन्द हुआ॥
अवकाश मिला तव श्रमिक सभी, एकत्रित डेरों में आए।
निज नित्य कृत्यसे हो निवृत्त, कुटियोंमें आसन फैलाए॥
सोए सब जी भर सकल रात, जागे जब अरुण उषा जागी।
फिर पहले दिनकी निवट, चल पड़े कार्यके अनुरागी॥
इस भाँति नित्यशः यथा समय, निश्चित स्थान पर आते थे।
पूरे प्रयत्नसे श्रमिक ओड़, अपना कर्तव्य निभाते थे॥
सब शान्त चित्त सब कान्त देह, अपनी ही धुनमें लगे हुए।
सबमें सनेह सब एक सूत्र, शुभ भाव हृदयमें पगे हुए॥
सर रचनामें रत रह कर भी, कुछ गुन गुन गाते जाते थे।
पिक और मयूर स्वरोंसे वे, अपना स्वर कभी मिलाते थे॥

केदारा—जीवन ज्योति जगाएँ, हम शक्ति न क्यों अपनाएँ,
स्वप्नोंमें फिर मारा मारा, निजको नहीं पहँचाने ।
ओ पगले ! तू भ्रममें भटका, लखे न दाएँ बाएँ ॥
रवि जब उदयाचल पर आता, अपना नव प्रकाश बरसाता ।
उसका पा पुरुषार्थ स्वयं, सब सुमन सुमन खिल जाएँ ॥
ऊँचे नीचे विषम और सम, गुरु-गिर-गव्हर ऊबड़ खावड ।
पार उतर कर सरस बनाना, सरिताएँ सिखलाएँ ॥
हम प्रतिपल निजश्रमको नम कर, अपने आत्मरूपमें रम कर ।
निज परमार्थ तत्व चिन्तनमें, अपनेको पा जाएँ ॥

दोहा—यों समीप ही श्रमिक सब, करते थे निजकाम ।
और हृदयमें था बसा, ज्ञात तनयका नाम ॥

फिर कई दिनोंके बाद एक दिन, दिन ढलनेका समय हुआ ।
सब कार्य लीन था श्रमिक वृन्द, निर्द्वन्द्व रूपसे अभय हुआ ॥
त्रिक्रम था खोद रहा मट्टी, जशमा भी ढोती जाती थी ।
मुख चन्द्र देख कर निज सुतका, वह फूली नही समाती थी ॥
दे ताल कभी चुटकी देती, झूलेको कभी झुलाती थी ।
मन मोहन मूरति पुत्र देख, बलि जाती कभी रिझाती थी ॥
मट्टीको झटपट डाल कभी, निज तनय निकट आ जाती थी ।
कोयलके से मधुरिम स्वरमें, सुन्दर लोरियाँ सुनाती थी ॥
आतपका क्लेश मिटानेको, वट पत्रों का था छत्र बना ।
अनिलान्दोलित शिशु शाखोंका, शिशुके हित सुन्दर व्यजन बना
वह शिशु जिसके ऊपर केन्द्रित थीं दम्पतिकी अभिलाषाएँ ।
वह लाल कि जिसपर थीं सीमित, ओडोंकी सारी आशाएँ ॥
वह शैशव जिसमें भेद नहीं जगतीका जहां विकार नहीं ।
जिसमें केवल आकर्षण है, औरोंका अणु अपकार नहीं ॥
वह शैशव जो जब आँगनमें, अपनी ही क्रीडाएँ करता ।
वो पास पडोसी जनके भी, अन्तर पीडाएँ हरता ॥

वह शैशव जो गृहका दीपक,
सबमें सुप्रकाश किया करता।
जो स्वच्छ चाँदनीके समान,
अपना मृदुहास किया करता॥

दोहा—वह शैशव साकार बन, आया था उसकाल।
सुप्त पालने में हुआ, जो जशमा का लाल॥

वह शिशु जब जब मचला करता, कोलाहल सा मच जाता है।
जिसकी इच्छाओंके ऊपर, इतिहास नया रच जाता है॥
वह शैशव जिसकी धूमधाम, परिवारोंमें छा जाती है।
जिसके हित नयनोंकी टोली, भौंरोंसी उड़ उड़ आती है॥
शैशवहै एक महासागर, क्रीड़ा है उसकी लहर लहर।
जो मातृहृदयका चन्द्र देख, चूमना चाहती छहर छहर॥
शैशव है ऋतु वसन्त सुन्दर, मचलना मधुर मादकता है।
शिशु सुमन पात्रको नयनों से, पी कर न जनक उर थकता है॥
इस मणिके सम्मुख सूर्य और शशि मणियाँ होती लज्जित हैं।
उन दोनोंके गुण एक साथ, केवल शैशवमें सज्जित हैं॥
वह महापुरुष जो बना गए, जीवन पथकी अविचल रेखा।
जगतीने प्रथम प्रथम उनको, केवल शैशव में ही देखा॥
इसके आँसू पर न्यौच्छावर, हो जातीं सकल सम्पदाएँ।
या मातृ पितृ नयनाम्बरमें घन उमड़ घुमड़ कर घिर जाएँ॥
इसमें बनती मिटती रहतीं नव जीवन की परिभाषाएँ।
इसमें आती जाती रहतीं, कितनी ही निपट निराशाएँ॥

इसके हँसने पर हँस पड़तीं,
कितनी ही मन सुमनावलियाँ।
इसके रोनेपर लुटती हैं,
संसृतिमें मोतीकी लड़ियाँ॥

दोहा—वही विश्वमें व्याप्त प्रिय, नव शैशव सुकुमार।
जशमा त्रिक्रमके लिए, सुखासार साकार॥

वार वार जशमा उसे, झुला रही सप्रीत ।
सुना रही संगीत मय, प्रिय लोरी का गीत ॥

लोरी का गीत—सो जा घरके उजियाले, मेरे नयनोंके तारे ।
तुझे सुलाने परियाँ आएँ, किरणें मिल पालना झुलाएँ ।
मेरे मनकी मधुर उमंगें, प्रति पल तेरा मन बहलाएँ ॥
तुझ पर मेरी अभिलाषाएँ,
तुझपर हैं मेरी आशाएँ ।
मात पिताके मनोगगनके, चान्द सितारे सोजा ॥
तुझे नाज़से हमने पाला,
तू है अरमानोंका प्याला ।
तू है लाल हमारा जीवन,
तू ममता का कलश निराला ॥
तेरी मूर्ति देख हम जीते, लोचन रहे न रससे रीते ।
तेरे शिशु स्वभाव सागरका, प्रतिपल रस मय प्याला पीते ॥
इस जीवनकी हरित लताके
विटप सहारे सोजा ।
वत्सलताकी धारा वहती, कलकलकी ध्वनिमें कुछ कहती ।
जननी जनकके मनोदेशकी, जिसमें प्रणय पारणा रहती ॥
नयन द्वीपका नव प्रदीप है,
पाप तापका तू प्रतीप है ।
जगके सफल मनोरञ्जन में,
तू सबसे प्रिय तू समीप है ॥
अब मेरी विचार सरिता के, प्रणय किनारे सोजा ।
त्रिशला सुतकी तुझपर छाया,
कौशल्याकी ममता माया ।
मात यशोदा से तूने ही प्यारे,
मिश्री माखन खाया ॥

तूझे गौतमीने विनोदसे गोद लिया मनको बहलाया ।
पलक पुतलियोंके झूलेमें मैंने प्रतिपल तुझे झुलाया ॥
इन ओठोंके जीवन के,
अविचल ध्रुव तारे सोजा ॥
कलियाँ हँसना तुझे सिखाएँ, और तितलियाँ नाच दिखाएँ ।
भौंरे गाकर तुझे रिझाएँ, किन्नरियाँ बलिहारी जाएँ ॥
खग कुल सा तेरा कलकल हो,
हृदय हिमालयसा निर्मल हो ।
गंगा यमुना सी विचार,
धाराओंका तुझमें जल बल हो ॥
आशाओं के कल्पवृक्ष ओ, हृदय दुलारे सो जा ॥

दोहा—जशमा भर निज हृदयमें, यही भाव सुविशाल ।
सुना सुनाकर लोरियाँ, बहलाती निज बाल ॥

क्षणमें ही सारी खुदी हुई, मट्टी वह फेंक इधर आती ।
नव भद्र भावनाएँ भरकर, वह नए नए गाने गाती ॥
जब एक वार निज कार्य व्यस्त, कुल चार घड़ी दिन शेष रहा ।
जशमा ने काम किया लगकर, था तदनुकूल ही वेष रहा ॥
तब आई वह निज बाल निकट, गा गा कर झुला दिया झूला ।
अतुलित प्रसन्नतासे उसका, था हृदय कमल दुगुना फूला ॥
अधिकाधिक श्रमके कारण ही,
सब केश पाश थे खुले हुए ।
मन बन्धनको या मन्मथ के,
वे रज्जु जाल थे तुले हुए ॥
या मकरकेतुको कर परास्त, कर दिया पताका तार तार ।
जिसके कारण अनिलान्दोलित, लहराए कुन्तल बार बार ॥
श्रमजन्य श्वास-प्रश्वासोत्थित,
उरमें कुछ कम्पन आया था ।
मानो केसरी किशोर ग्रीष्म से,
काननमें घबराया था ॥

धूमिल दर्पण पर जल कण सम,
कुछ झलके स्वेद बिन्दु सीकर।
ज्वारके बाद जैसे मोती,
सागरकी सैकत के भीतर ॥

दोहा—उसी समय आए वहाँ, सिद्धराज महाराज।
श्रम अवलोकन के लिए, विना नृपोचित साज ॥
सूक्ष्म दृष्टिसे देखते, कैसे होता कार्य।
प्रश्नोत्तर हो जाँचता, ज्यों कोई आचार्य ॥

सलिलाशयकी सीमाओंको, सब ओर घूम फिर कर देखा।
फिर खींची भाव मनोरथ मय, रस पूर्ण सरोवर की रेखा ॥
अधिकारीने जब सहसा ही, भूपतिका आना जान लिया।
तब पहुंच शीघ्रतासे समीप, आदरके सहित प्रणाम किया ॥

मजदूरोंने भी झुक झुक कर,
कर लिया नृपतिका अभिवन्दन।
उनका पुलकित प्रति रोम रोम,
देता था अन्तर अभिनन्दन ॥

राजा सानन्द विलोक उन्हें, आनन्दित हृदय झूमता था।
श्रमिकोंको आश्वासन देता, उनके ही निकट घूमता था ॥
शिशु समीप संस्थित जशमा पर, आकस्मिक नृपकी पडी दृष्टि
अथवा उत्फुल्ल कमलिनी पर, हिम ऋतुमें हिमकी हुई वृष्टि
नृपने अनुपमा सुन्दरी उस, जशमा को भली भाँति जाँचा।
मानो संशोधकने मुद्रित पुस्तकका शोधपत्र जाँचा ॥
फिर सोचा धूलि भरी रमणी, होती ऐसी परिलक्षित है।
मानो वसुधाके अंचल में, कोई अमूल्य मणि रक्षित है ॥
यह माया है या स्वप्न एक, या मेरी ही मतिका भ्रम है।
यह रूप राशि है अद्वितीय, बन्धन का जो कि उपक्रम है।
शत-शत-शतपत्र संकलित कर, यदि कोई मूर्ति रची जाए।
तो भी न कभी इसके उरकी, अणुभर भी समता कर पाए ॥

पर यह क्या कोई सबल, मुझे उस ओर खींचता जाता है।
क्यों स्वयं समाकर आँखोंमें, फिर इन्हें मींचता जाता है॥
क्या यह अबला है जो बलसे, मुझसे भी महा रथी का मन।
है छीन चुकी जैसे वनमें, छीने कोई लोभीका धन॥

आवश्यक क्या जलका सर जब,
यह रूप सरोवर भरा हुआ।
जिसकी गति लहरोंसे मेरे,
अन्तस्तल तक है हरा हुआ॥

दोहा—नहीं जान कोई सका, यह सागर या कूप।
खारा है या मधुर है, इस सुवर्ण का रूप॥
अपने सम्मुख देख यह, रूप प्रकाश प्रसार।
लगा विवेचनमें वहीं, भूला निज व्यवहार॥

गीत—रूप क्या है मनकी वीणाका अनोखा राग है।
स्वप्नके सन्देश की जिसमें धधकती आग है॥
बनती मिटती रहती हैं, युग युगकी भाषाएँ जहाँ
आँसुओंके तारसे, गुँथती हैं आशाएँ जहाँ॥
सप्तसागर भी जिन्हें अबतक बुझा पाए नहीं।
रहती आठों याम ओठोंमें पिपासाएँ जहाँ॥
है जलन फिर भी न जाने इसमें क्यों अनुराग है।
रूप क्या है मनकी वीणाका अनोखा राग है॥
रसके पारावारमें वड़वाग्नि सम है जल रहा।
और फिर तूफ़ान यौवनका हृदयको छल रहा॥
इतनी कोमलता है पाटलकी कली भी मात है।
और दृढतामें कुलिश भी झुकके करता बात है॥
यह हृदयका हार या कोई चमकता नाग है।
रूप क्या है मनकी वीणा का अनोखा राग है॥
बादलोंके साथ हँसता है जहाँ पर चन्द्रमा।
मधु सदृश उन्माद पाकर मन स्वयं जिसमें रमा॥

बाहरी संसारकी अनुभूतियोंसे दूर है।
जिसके एक आघातमें बल आप चकना चूर है॥
यह समर्पण है हृदयका उठता याकि विराग है।
रूप क्या है मनकी वीणा का अनोखा राग है॥
विश्वके आकर्षणोंमें यह अनोखी सृष्टि है।
यह अमृतकी वृष्टि अथवा मोह ममता दृष्टि है॥
फूल है वह साथ जिसके शूल हैं उस पार के।
इस सरोवर में ही लगते हैं थपेड़े ज्वार के॥
जोड़ है यह स्वत्वका अथवा निजत्व विभाग है।
रूप क्या है मनकी वीणाका अनोखा राग है॥
अति सुगम फिर भी कठिन तम यह अपरिचित राह है।
हिम शकलसा शीत है पर ग्रीष्म रविसा दाह है॥
ज्योति ऐसी है कि खिंच स्वयमेव आते हैं पतंग।
नाद ऐसा है कि सुनकर नाच जाते हैं कुरंग॥
पाश है यह फाँसनेका या कि बन्धन त्याग है।
रूप क्या है मनकी वीणाका अनोखा राग है॥
प्रेम ईन्धन इसका जो बुझकर न कोयला हो सके।
संस्मरण वह है न जिनको प्राप्त कर नर सो सके॥
जिससे चलती है हृदय पर प्रेमकी पिचकारियाँ।
सूखतीं कुछ और कुछ हरियातीं उपवन क्यारियाँ॥
रीति है वह जिसके ऊपर खेलता जग फाग है।
रूप क्या है मनकी वीणा का अनोखा राग है॥

दोहा—विविध भाँतिके तर्क बहु, मनमें कर तत्काल।
जशमा कैसे प्राप्त हो, सोच रहा भूपाल॥

यदि कोई युक्ति निकल आए, तो मैं इसको पा जाऊँगा।
पर पहले तो सस्नेह स्वयं, साधारणतः समझाऊँगा॥
राजाओंके अन्तःपुरमें भी यह अलभ्य सुन्दर स्वरूप।
आश्चर्य मिला है ओडोको जिसका याचक बन रहा भूप॥

इसमें जगके निर्माता की भी,
निश्चय-ही है बड़ी भूल ।
पर उसे क्या कहें एक साथ,
जब बसे विटपमें फूल शूल ॥

विस्मय भी-तो तब स्वयं लोक के दृष्टान्तों द्वारा खोता ।
जब अधिक खादसे अन्न कमल कीचड़ में ही पैदा होता ॥
या ब्रह्मा की ही विड़म्बना उसने कितनी भूलें की हैं ।
जो पात्र कुपात्र विना सोचे, ही श्रेष्ठ सम्पदाएँ ! दी हैं ॥

ज्ञानियों तथा विद्वानों को,
उसने धन हीन बनाया है ।
कण्टक कुसुमोंके पास कला-
धरमें कलंक उपजाया है ॥

बस वैसी ही यह एक महात्रुटिमय करणी उस विधि की है ।
जो निम्न जातिमें यह अमूल्य सुंदर स्वरूप की निधि दी है ॥

इस नारि रत्नको मैं लेकर,
सब दैव प्रवाद मिटाऊँगा ।
कर साम-दाम-भय-भेद,
इसे अन्तःपुरमें पहुँचाऊँगा ॥

दोहा—मैं राजा हूं हो नहीं, सकता कभी उदास ।
यही सोचकर चल दिया, नृप जशमा के पास ॥

नमो त्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्त महावीरस्स

सतीनिदर्शनकाव्यम् ।

जशमाचरित्रम् ।

चतुर्थः सर्गः ।

दोहा—शीघ्र मृत्तिका फेंककर, थोडा समय निकाल ।
झुला रही जशमा स्वयं, आ-आकर निज बाल ॥

धूलिसे धूसर भी तनमें, अपने पनका नव रूप वसा हुआ ।
मानो कहीं मकरंद मिले, जलमें नव पंकज हो विकसा हुआ ॥
स्वर्णिम-कान्ति समूह प्रवाह सा, अंबर अंचलोंसे वरसा हुआ ।
शारद वादलोंसे छनता नभमें मनो चन्द्र प्रकाश लसा हुआ ॥
यों ही कभी कभी कौतुक से, भुजका कुछ धक्का कहीं लग जात
रज्जुओंके कल-कम्पनसे, तब अंचल था सिरका उड़ जाता ।
पालनेकी गतिमें शिशु पे झुका, था जशमा-मुख ऐसा दिखाता,
मानो कोई नव वारिद पुत्रके साथ ही चन्द्रमा को हो झुलाता

दोहा—तनय हृदय वहला रही, सुखसे ओत प्रोत ।
प्रवहित कर संगीतका, परितः मधुरिम स्रोत ॥

गीत—मन मन्दिरके दीप हमारे,
तेरा यश चन्द सा चमके, देश जातिमें नव द्युति दमके,
तू सवका प्रेमी वन जाए, कोई हो न प्रतीप ।
चाहे प्रवल प्रभंजन आए, सघन गगन ओले वरसाए,
पर तू रहे अटल अविचल, असफलता के असमीप ।
तेरी ज्योति प्राप्त कर जगमें, जीवन जागृति जागे,
कायरता कृत्रिमता कोई, आए नहीं समीप ।
रोम रोम में सत्य-अहिसा, वसे हृदयमें प्रेम प्रशंसा,
पर उपकार अमृतसे अपने, अन्तरंगको लीप ॥

उस ओर शनैः शनैः पश्चिम में,
रविकी रथ रेखा दिखा रही थी,
इस ओर भी पाटन देश नरेश की,
बुद्धि स्वयं भ्रमी जा रही थी ।
मृदु शीतल मंद सुगंध समीर से,
पत्रावली इतरा रही थी,
स्वयमेव खिंचा नृप आरहा था,
जहां जशमा पतिव्रता गा रही थी ॥

दोहा—जशमा लेकर टोकरा, फिर चलदी तत्काल ।
स्वल्प समय में वह सभी, मट्टी आई डाल ॥
दुर्गा स्वर मुखरित पुनः, मृदु भूपाली राग ।
शिशु सम्मुख गाने लगी, व्यक्त शौर्य-अनुराग ॥

गीत—चाहती हूं धर्मको, सराहती हूं कर्म को,
शक्ति मेरे हाथ हो, शक्तिशाली साथ हो ।
प्रेम दुंदुभी बजे, क्षेम विश्वमें सजे,
दया का प्रसार हो, सत्यका व्यवहार हो ।
आत्मा बलवान हो, स्वत्वकी पहचान हो ।
लोक देखें ज्ञान के, प्रकाशका प्रसार है,
लोक समझें होगया, वीरका अवतार है ।
एक नया लोक हो, शान्तिका आलोक हो,
बच्चा बच्चा भारत का, वीर हो अशोक हो,
दास हो न कोई किसी का न कोई नाथ हो ॥
फूल और शूल एक साथ बसें डाल पर,
तितली औ मिलिन्द नाचें पल्लवोंकी ताल पर ।
कालिमा औ लालिमा साथ वधु भाल पर,
झूलगए बुलबुलें भी लहरोंकी उछाल पर ॥
चाँदनीके साथ-साथ रातका निखार है,
प्रीतिके प्रयोगमें कलियों का सिंगार है ।

तत्व हो महत्व हो निजत्वका विकास हो,
कोई भी कहीं न एक क्षणको भी अनाथ हो ॥
हो स्वदेशकी स्वतंत्रता का भाव संग में,
औ स्वदेश नाम से उठे उमंग अंग में।
एक हों समस्त बन्धु रंगे एक रंग में,
नदिएँ एक जैसी हैं समुद्र की तरंग में ॥
आत्म ज्योति पाके स्वयं ज्ञानियोंमें मिल सकूं,
फूल बनके लोक के हृदय सरों में खिल सकूं।
ध्वस्त हुआ स्वार्थ हो पूर्णतः परमार्थ हो,
पाप शक्तिके समक्ष में न झुका माथ हो ॥

दोहा—सहसा वायु झकोर कुछ, हुए तीक्ष्णता पूर्ण।
नभ में दिखलाई दिया, व्याप्त धूलिका चूर्ण ॥
क्या भविष्यमें है छिपा, कोई गहरा व्यंग्य।
बदला इसी विचारमें, उसके मुखका रंग ॥

गीत—उत्पात कहीं पर है आने वाला, जो बदल गया है आसमानका रंग।
जीवन पनघट पर भीड़ लगी होगी,
वेदना रागकी मीड सजी होगी।
यौवनका वह तूफान कराहें भर कर,
लिखता होगा अपने ऊपर कुछ व्यंग्य ॥
पीला वसन्त सावन बन आया होगा,
सोनेके शिखरों पर घन छाया होगा।
अभिशाप तरुणता बनी किसीकी होगी,
उठती होगी जब मनमें प्रणय उमंग ॥
अल्हड़ निर्झर सरितासे मचला होगा,
हिमके समूहने पादप कुचला होगा।
वन उजाड़ता है उन्मत्त मतंग,
या किसी विरत पर नव उपसर्ग प्रसंग ॥
बिखरी होंगी दुष्कृतियों की कुछ अलकें,
आँसूसे धुलकर निखरी होंगी पलकें।

कोई रावण लंकासे आतो होगा,
अवलोक विपिनमें सीता रूप तरंग ॥
कुविचार याकि अन्धड़ वन कर आया,
या कहीं परीक्षा का क्षण घन छाया।
चमकती कहीं होगी सतीत्व छाया,
चन्दना जननिसा होगा जीवन भंग ॥
जौहरकी ज्वाला कहीं जली होगी।
मुर्झाई इक अधखिली क़ली होगी ॥
कोई प्रमत्त सौन्दर्य राशि पर रीझ,
करता होगा अपने पदका-भी भंग ॥

दोहा—कुछ चिन्तित सा देखकर, जशमाका नव रूप।
उसके सम्मुख आगया, पुर पाटन का भूप ॥

देखा समीपसे जयसिंह ने, बिखरी हैं शोभामय अल्कें,
नभ देख देख शिशुके ऊपर, झुक जाती हैं पगली पलकें।
फिर अपनी दृष्टि तुला द्वारा, जशमाका अतुल रूप तोला,
नव पुष्प रूप लालची भ्रमर, सम सिद्धराज उससे बोला।
सौन्दर्य लोक की नई सृष्टि औ अमृत वृष्टि रसकी सीमा,
है नहीं तुम्हारे योग्य मृत्तिका ढोनेकी कृति अति भीमा।
है ठीक नहीं जो रम्य रूप, श्रमके कारण कुचला जाए,
क्या उचित भला जो अमल कमल वन्य द्विपसे विदला जाए।
मै सिद्धराज-जयसिंह नृपति पाटन पति आज कहाता हूं।
तेरी सुन्दरता पर अपना तन-मन-धन वलि वलि जाता हूं ॥
तेरे सन्मुख याचिका बनी, मेरे अन्तरकी आशाएँ।
करदूंगा पूर्ण सभी रूपसि मुँह मांगी तव अभिलाषाएँ ॥
मलयानिलका झकोर वनकर, सब तेरा श्रम हर लूंगा मैं।
बिजली सी तुमको सावन का बादल बन कर वर लूंगा मैं ॥
सच तो है यह यदि एक बार मैं तेरी स्वीकृति पा जाऊं।
तो तुझे सजानेको तारों के भी आभूषण बन वाऊं ॥

शत सुमनोंकी सुषमाका जिसमें समस्त माधुर्य सना।
बस तेरे उसी मुख कमलका मेरा मन बन्दी भ्रमर बना॥
मैं आज तुझे अपनानेको अपना नृपत्व तक हरता हूं।
अपने-पनकी निधियां सारी, तुझपर न्यौच्छावर करता हूं॥
है रूप अपसरोपम तेरा, मत क्षुद्र पंकमें यों सन जा।
है वार बार याचना यही मेरी बनजा मेरी बनजा॥

दोहा—सहसा नृपके वचन सुन, कलुष भावना जान।
जशमा बोली भूपसे, सुस्थिर कर निज ध्यान॥

क्या विषके रससे बुद्धिमान, निज प्राण सींचता है कोई।
निज हाथ डालकर बाँवी में या साँप खींचता है कोई॥
क्या जान बूझ कर तप्त तेल ऊपर उलीचता है कोई।
क्या आत्म घातकी इच्छा विन निज देह भींचता है कोई॥
क्या उच्च विषम गिरि पर चढ़कर निज नयन मींचता है कोई।
या स्वीय पुत्रियों पर करता क्या प्रगट नीचता है कोई॥
कुछ जीव विपदमें भटके थे, तुमने उनको आधार दिया।
जीविका भूमिमें सरस बना, सत्कारोंका उपहार दिया॥
सद्व्यवहारों उपकारोंका, अंकुरको वातावरण मिला।
पाला भी पिता रूप बन कर, गोदीमें सुन्दर फूल खिला॥
माला-कारोंसी मिली कहां तुमको प्रसून वंचन शिक्षा।
जो मुझ अपनी पुत्रीसे ही, माँगते नृपति! ऐसी भिक्षा॥
क्षण भँगुर मट्टीका घटसा, सुंदर शरीर है नाशवान।
पानीका एक बुलबुला सा, मनकी लहरों पर कम्पमान॥
यह आज अनिलसे आँदोलित करता कलविकोंमें नर्तन।
कल वली कालके हाथोंसे होगा स्वरूपमें परि वर्तन॥
ऐसे नश्वर पदार्थ पर फिर, हे राजन्! मोह बढ़ाना क्या।
केवल मट्टीके ढेलेपर निज मन का सुमन चढ़ाना क्या॥
आँधी लड़ती वृक्षोंसे है, तिनकोंसे नहीं बोलती है।
भीषण वड़वानल ज्वाला क्या, नदियोंकी धार तोलती है।

फिर मैं तो विवाहिता नारी, मेरा पति है घनश्याम मुझे।
उसके मन-मंदिर में रहती, उस पर ही है अभिमान मुझे॥
मेरे तो रोम रोममें वह मेरा स्वरूप बन रहता है।
मेरे कारण ही देश छोड परदेश क्लेश वह सहता है॥
बस एक उसीके चरणोंकी, नव भक्ति-सुधा नित पीती हूं।
वह मुझे देखकर जीता है, मैं, उसे देखकर जीती हूं॥
लालसा नहीं उसके बिन है, कुछ मुझे स्वर्ग सुख पानेकी।
क्या बिना दिवापति, सूर्यप्रभा, है उदयाचल पर आनेकी॥
श्रमजीवी की नारी हूं मैं, श्रम करके ही कुछ खाती हूं।
पति भूमि खोदता वह मेरा, मैं मट्टी ढोने जाती हूं॥
इसलिए नहीं मुझको राजन्! अभिलाषा तव निधि पानेकी।
मेरी तो ध्रुव धारणा एक, सत्कर्मोंको अपनाने की॥

(सिद्धराज)

दोहा—जशमाके सुनकर वचन, भाव भरे गंभीर।
राजा बोला स्नेह से, धर कर मनमें धीर॥

पा वशीकरण सा रम्य रूप, आई अनन्यता है तुममें।
हो धूलि धूसरित रत्न एक, क्या यही धन्यता है तुममें॥
जीवन सागर सा खारा कर, क्या स्नेह जन्यता है तुममें।
नृपको भी देतीं सदुपदेश, यह अहंमन्यता है तुममें॥
विकसित कमलिनियों पर सदैव भ्रमरावलि घूमा करती है।
तितली इतराकर बार बार, कलियोंको चूमा करती है॥
नदियाँ उफनाती आती हैं, सागरसे घुलमिल जाती हैं।
कुमुदिनियाँ रजनीमें तारापति देख देख मुसकाती हैं॥
तारोंका कोष लुटाकर निशि किसकी क़ीमत आँका करती।
शशिके दर्पणमें स्वयं प्रकृति कीसकी छाया झाँका करती॥
अपने स्वरूपमें तुम स्वतंत्र, अपने स्वरूपमें मै स्वतंत्र।
पर प्रेम बना देता सदैव, दो हृदयोंको है एक तंत्र॥

जिसमें न अमृत की झलक देख, है स्वयं सुधा पीना सीखा।
क्या फिर उसने जगमें आकर, नव यौवनमें जीना सीखा॥
फिर इसमें मेरा वश ही क्या, जब कोई स्वयं करे घेरा।
मम हृदय देशको परख लगाले, महलोंमें अपना डेरा॥
कर आज विवश पाटन पतिको, उसके सब बलको नमा गई।
तनमें मनमें इन प्राणोंमें तुम, रोम रोम में समागई॥
इसलिए प्रार्थना है नृपकी, अन्तस्तलमें रम जाओ तुम।
मुझपर स्वतंत्र बन राज्य करो, जशमे! मेरी बन जाओ तुम॥

(जशमा)

दोहा—सिद्धराजके वचन सुन, उनपर किया विचार।
जशमाने उत्तर दिया, सत्यव्रत का सार॥

द्रुतविलंबित—

यह कहा किसने कब है कहाँ!
कमलसे भ्रमरालि मिली नहीं।
कब निशापतिको अवलोकके,
कुमुदिनी सविनोद खिली नहीं॥

प्रणयका अवतार स्वरूप ही,
दमकती नभमें घन दामिनी।
विलसती अवनी पर चाँदनी,
विहँसती युवती सम यामिनी॥

यह सभी कहते सुनते सभी,
मगर क्या न कभी यह सोचते।
हृदयमें नव वत्सलता भरे,
मृदुल भाव न क्यों फिर रोचते॥

विदित है सबको कि समुद्र भी,
ललकता अवलोक निशेश को।
न फिर भी यह जान सके कभी,
सुत-सुता पर प्रेम विशेष को॥

मिलन दर्शनको किसका नहीं,
मन भला ललचा अविलम्ब है।
मिलन तो सुखका वरदान है।
मिलन जीवन का अवलम्ब है॥

मगर हो उसमें न कुवासना,
न उसमें छल ही कुछ हो भरा॥
निज सहोदर से मिलती यथा,
अति-सनेह सनाथ सहोदरा॥

कुछ समीर झकोर कभी कभी,
सुहृद आतपका सुख संग ले।
हृदयमें भरके जलराशि को,
उमड़ते नभके घन रंग में॥

यदि कभी उनमें कु[illegible]गई,
सबल भेद भरी वचनीयता।
मनुजता जड़ बोल उठी तभी,
प्रणय विद्युतकी रमणीयता॥

यदि यहाँ रहती वह नित्यता,
विलग हो सकते न किसी घड़ी।
न फिर पास भला अलि क्यों गया,
झर पड़ी जब पंकज पंखड़ी॥

जब स्वतन्त्र सभी नि[illegible] रूप में,
विजयके हित पुद्गल लाँघते।
फिर भला मुझ से अपदार्थ से,
तुम अयाचित क्यों नृप माँगते॥

नृप विचार करो किस भाँति से,
तव सुरक्षित आसन हो सके।
जब अभी अपने मनसे नहीं,
तब कुशासन कर्दम धो सके॥

प्रतिशरीर यहां निज रूपसे,
क्षणिक है चिर नश्वर रूप है।
वह अवश्य यहीं मिट जायगा,
अति दुखी नर या नव भूप है॥

मगर पुद्गलकी विभु दृष्टिसे,
वह स्वयं अविनश्वर नित्य है।
निवसता सबमें वह एकसा,
सतत चेतन अव्यय, सत्य है॥

फिर भला तुमने मम रूप को,
अगर देखलिया निजरूप में।
चकित क्यों इतने नृप हो गए,
जब कि एक सभी निज रूप में॥

नृपति जो कहते "प्रतिरोममें
निवसती" तुम तो यह भूल है।
विटप अंक सदा वसते रहे,
पृथक् कण्टक से पर शूल है॥

विवश जो तुम देख मुझे हुए,
यह महा भ्रम पाटनराज! है।
तुम नहीं निजको पहचानते,
मति तभी बदली यह आज है॥

घट न अन्य घटों पर मोहता,
कुसुम भी परके न अधीन है।
हृदयके भ्रमसे नर सर्वदा,
बन रहा इतना नृप दीन है॥

इसलिए भर पुण्य प्रभावना,
मत करो कलुषा यह याचना।
विनशता इससे सकलंक है,
मनुजमें यदि कल्मष कामना॥

कह रहे तुम जो तव मैं बनूं,
सतत मैं तव एक सुता समा।
तुम पिता इससे तव सामने,
नृपति मस्तक आज यहाँ नमा॥

अधिक है कहना सब व्यर्थ ही,
उचित संयमकी नव लालिमा।
नृपति त्याग सभी कुविचार दो,
चरितमें न लगे कुछ कालिमा॥

(सिद्धराज)

दोहा—जशमा की वाणी मधुर, सुन दर्शनका सार।
उत्तर दिया नरेशने, मनमें सोच विचार॥

जब मानवको नव देह मिली, तनमें जीवनका सार मिला।
जीवन रसमें नव यौवनका, सुन्दर तम एक प्रसून खिला॥
यौवनमें भावुकता जागी, भावुक मनमें आई उमंग।
फिर इसी उमंग नदी में ही, लहराई इच्छा की तरंग॥
इच्छामय लहरोंमें आशा, आशासे जीवन गान बना।
गायनमें निज अन्तस्तलके, भावोंका प्रणय प्रवाह छना॥
वह प्रणय प्रवाह आज मुझमें, जो तुम्हें सरस करने आया।
यह हृदय उदधि तव मुखशशिको, अवलोक आज है ललचाया॥
क्यों शशिकी किरणें कुमुदी को, छू कर यौवन अर्पण करतीं।
क्यों मेघबालिकाएँ घिर कर, गिरि शिखरों पर तर्पण करतीं॥
क्यों सुख स्वप्नोंकी शय्या पर, आता है नियमित उजियाला।
जिससे जगमग होती रहती, यह यौवनकी नाटकशाला॥
प्राचीके गृहमें प्रात बिता, दिनमणि स्वशक्तिसी दिखलाते।
क्यों स्वयं पश्चिमाकी देहलीके, आगे आकर रुक जाते॥
अंकोंमें भर फल, पुष्प भले, क्यों विटपावलि है झुक जाती।
सन्ध्याको नित्य प्रतीची में, अनुराग लालिमा क्यों आती॥
जिसको न तितलियाँ चूम सकें जग उपवनमें वह पल्लव क्या।

जिससे न हरिण आकर्षण हो, वह वीणा का मधुरिम रव क्या ॥
जब तन क्षणभंगुर मानव का, तो जितने दिन इसमें जीना ।
उतने दिन हो निश्चिन्त यहाँ, है मधुर प्रेम मधु का पीना ॥
यह सुख वैभव जो मिले हमें क्यों व्यर्थ इन्हें जाने दें हम ।
क्यों यौवनमें ही वूढ़ोंका, वैराग्य भाव आने दें हम ॥
जब भूमि गगन नभचर सारे, संयोग साधना में रत हों ।
तब क्यों हम सब सामग्री पा, यह क्लेश पूर्ण करते व्रत हों ॥
जैसे नभका प्रत्येक रूप, सागर जलमें आ संचित हो ।
बस इसी भान्तिसे सुन्दरि ! तुम मम नयनों में प्रतिबिंबित हो ॥
जब एक दृष्टिसे जो अनित्य है, अन्य दृष्टिसे वही नित्य ।
जो सत्य तुम्हारे दर्शन में, मेरे दर्शन से वह असत्य ॥
फिर क्यों तुम पुत्री बन सकतीं, जब तुम्हें स्वयं मै अपनाता ।
अपना तन मन धन यौवन सब, तेरे ऊपर बलि बलि जाता ॥
यदि कभी किसीका कोई भी, है पूर्ण मनोरथ कर देता ।
तो जीवनमें यशशाली वह, कितना ही पुण्य कमा लेता ॥
मेरी भी इच्छा पूर्ण करो, मत बातोंमें बहलाओ तुम ।
चल नगरीमें रानी बनकर, सुंदरि ! मुझको अपनाओ तुम ॥
मैं पलकें बिछा रहा अपनी, तू हृदय सिंहासन पर विराज ।
मेरी बनकर पटरानी तू, इच्छानुकूल सब साज साज ॥
तू मेरा हृदय हार बन जा, मैं तेरा पुण्य विभोर बना ।
मै अपलक तुझे निहारूंगा, मुख शशिका स्वयं चकोर बना ॥

(जशमा)

दोहा—जशमाने नृपके सुने, जब ऐसे उद्गार ।
कुछ चिंतित सी होगई, बोली यही विचार ॥

कवित्त—मधु-शर्करा का रस घोल सींचते हो किसे,
मधुर न होगा कटुरस वाला नीम है ।
मेरी भावनाओंका विचार ही करेगा कौन,
सम्मुख समाज और बहरा हकीम है ॥

नीची दृष्टि डाल तिरछा सा कुछ झांककर,
अंध सुत जागेगा न कैसा वीर भीम है ।
सीमित सा मान किस पर बान्धते हो सेतु,
देखते नहीं हो महा सागर असीम है ॥
व्यर्थका प्रलाप साहसीको है डिगाता कब,
इन सत्यव्रतके कणोंको स्वर्ण जान लो ।
धर्मके प्रवाहमें तरणी बहने दो मेरी,
इन पटबीजनोंको पथ दीप मान लो ॥
बनो मतवाले मत इन चन्द्र तारकोंमें,
व्यर्थमें अनन्त वेधनेको न कमान लो ।
निजको न भूल फूलके समान यौवन है,
एक वार अपना स्वरूप पहचान लो ॥

उमड घुमड़ आए बादल वसन्त में भी,
पर ऋतुराज का न नाम बदला गया ।
शत शत भौरोंके निरन्तर क्रमणसे भी,
कमल दलोंका मकरन्द न धुला गया ॥
ताने गए भृकुटी शरासन न तो भी कभी,
सत्य प्रेमियोंसे हाथ अपना मला गया ।
मेरे पास आकर भी आपका सदुपदेश,
पाप पूर्ण दूर सकुचाकर चला गया ॥

श्रमसे ही पेट पालना है महापुण्य मुझे,
मट्टी ढो झुलाती निज लालका मैं पालना ।
राज, पाट रानीकी उपाधि मुझे भाती नहीं,
सीखा नहीं पातिव्रत्य धर्मको कुचलना ॥
निधियाँ किसीकी मेरी सिद्धियाँ बनेंगी नहीं,
मुझको तो अपने सुकर्मसे सम्हलना ।
तुम जिस भावनाका अवलंब ले चुके हो,
भूपति है एक मात्र वह भारी छलना ॥

इस हेतु पापकी कथाएँ करो व्यर्थ मत,
परकीया नारी पर मत ललचाओ तुम ।
प्राणीमात्र पर एक सत्य प्रेमभाव धार,
शासनमें अपने सुशांति बरसाओ तुम ॥

जिसकी प्रिया हूं बनी उसकी रहूंगी सदा,
मुझ पर वासना प्रभाव न जमाओ तुम ।
मर्म जानकर क्षेम प्रेमका विचार करो,
धर्म धार कर सत्य प्रेम अपनाओ तुम ॥

(सिद्धराज)

दोहा—सुनकर जशमाके वचन, भावभरे गंभीर ।
सिद्धराज बोला वचन, यद्यपि हृदय अधीर ॥

है उचित न फूल समान देह यों, आतपमें कुम्हला जावे ।
सौन्दर्य और यह नव यौवन, मट्टी ढोकर विनशा जावे ॥
वनके रहने वालोंमें क्या, कुछ रत्न परख हो सकती है ।
हीरे की चमक महलमें ही, कुछ ज्योति रत्न बोसकती है ॥
मेरी नगरीमें तुम पधार, महलोंमें चलो निवास करो ।
निज रूप नदी की सुधा वहां, आप्लावित सब रनवास करो ॥
तव मुख पंकजका भौरा बन, मैं तव गुण गुन गुन गाऊँगा ।
तुम निजको मुझपर बलि जाना, मैं तुमपर बलिबलि जाऊँगा ॥
अतिसुन्दर वैभव पूर्ण नगर, पाटनमें मम उर हार बनो ।
मैं द्रुम विशाल तुम लता बनो, मुझ बन्धनका उपकार बनो ॥
भौरा समीप आता जैसे, कलियॉं देती हैं अधर खोल ।
सुरभित आमोंकी शाखों में, कोयल देती है मधुर बोल ॥
तितली उडती है पल्लवसे, मिलकर करती है नए खेल ।
क्यों फूल हृदयका सब रहस्य, देता है यौवनमें उंड़ेल ॥
सागरने सब रस संचित कर, खारे पनका पर्दा डाला ।
दे सका न मरुके प्यासोंको, निज जीवन स्वयं जला डाला ॥

तुम फूल बनो सागर न बनो, मट्टी ढो रस न छिपाओ तुम।
रुपसि फूलोंकी भाँति मधुप जन हित मकरन्द लुटाओ तुम ॥
कितनी निधियोंको रजनी में विभु नभने निजमें झलकाया।
पर क्या निर्धन भूमिस्थोंने, केवल न ओस उनको पाया ॥
सौन्दर्य सम्पदा पाकर यह, तुम भी न अधिक अभिमान करो।
मै याचक बन समीप आया, कुछ दान करो कुछ दान करो ॥
पत्थरके उरकी धाराएँ, नदियॉ बन बनकर उतर पडीं।
जीवनके संगमकी ध्वनियाँ, बन अश्रुराशियॉ बिखर पर्डी ॥
बिजली चमकी तो भूले राही, को भी भूली डगर मिली।
मेघोंने निज सत्ता खोई, वसुधामें पाटल कली खिली ॥
जब हार सिंगारके फूलों के ही तुल्य हमें निश्चय झरना।
तो तब तक जब तक जीवन है हमको भी सुख संयोग भरना ॥
मधुकर बनकर कमलिनियोंकी, पंखुड़ियोंको मैने चूमा।
मदमाती तरल तितलियोंके, दलके भी साथ साथ घूमा ॥
मैं हरिण समान कभी अपने, अधरोंकी प्यास बुझा न सका।
जशमे ! तेरा सा रम्यरूप, मुझको अन्यत्र सुझा न सका ॥
अब मेरे मनके मंदिरमें, मधु मिलन प्रदीप जगादो तुम।
युग युगके सूखे उपवन पर सुन्दरता रस बरसादो तुम ॥
इस लिए अधिक अपने मनमें, कुछ सोच विचार न लाओ तुम।
सब सुख भोगो रानी बनकर जशमे ! मुझको अपनाओ तुम ॥

(जशमा)

दोहा—उसी भाँतिका सुन पुनः, राजाका आलाप।
जशमा बोली दृढ वचन, कुछ क्षण रह चुप चाप ॥

दूरसे पर्वतों को देखो, कितने शोभामय लगते है।
पर यदि समीप जाते है तो, वे भाव न मनमें जगते है ॥
जो हरितिम कान्ति सजाकर हैं, दूरसे निवसते प्राणों में।
जाकर समीप देखो तो फिर लगता न चित्त पाषाणों में ॥
यदि दूर ढोलके बोल सुनो तो अपना मन खिंच जाता है।

पर अंदरसे अवलोक उसे, जन एक पोल ही पाता है ॥
मृगतृष्णापर हरिणोंका गण, तालाव समझ ललचाता है ।
पर यदि समीप दौडता कभी, तो केवल आतप पाता है ॥
है उसी भाँति हे राजन्! वैभव समस्त यह नाशवान् ।
लक्ष्मी भी है सुस्थिरा नहीं, जानते सभी हैं ज्ञानवान् ॥
आकुलता पूरित नगर कहां, सुख शान्ति पूर्ण शुभ ग्राम कहाँ ।
तुम सोचो स्वयं ग्राम कासा, नगरोंमें है विश्राम कहाँ ॥
स्वच्छन्द वपु-जीवन स्वतन्त्र, श्रम पूर्ण मनोहर ग्रामों में ।
क्या भोलापन मिलसकता है, प्रासादों के आरामों में ॥
है सदा ग्राम ही बड़े बड़े, नगरोंका स्वयं जन्म दाता ।
कर अन्न दान कर वस्त्र दान, सच तो वह जीवनका दाता ॥
यह ऊँचे ऊँचे बडे महल, यह रंग महल यह भीने से ।
बनते सजते रहते ग्रामीणों के ही रक्त पसीने से ॥
फिर भला ग्रामका वास छोड़, क्यों नगर मुझे रुच सकता है? ।
क्या पिक रसाल मंजरी त्याग, ढाकों पर भी झुक सकता है ॥
केवल कण्टक मय डालों पर, है मृदुल गुलाब खिला करता ।
भूले भटके भी नहीं गुलाबोंमें वह रूप मिला करता ॥
कण्टक-कंकड़ियोंमें रहकर, मैने अपना जीवन देखा ।
खींची न सामने कभी राज-महलोंमें रहने की रेखा ॥
स्वच्छंद विहंगम नीड़ोंमें, तृणशय्या पर सुख पाते हैं ।
शुक-पिक-सारिका सुवर्णपिंजरोंमें व्याकुल हो जाते हैं ॥
खट्टे आमोंके बौरोंमें कोयल जो मधु रस लेता है
क्या वैसा स्वाद उसे अंगूरोंका गुच्छा भी देता है ॥
थिरकती नाचती तितली यह, काण्टोंके भी दुःख सह सकती ।
क्या रुई और रेशमवाले गद्दों में भी है रह सकती ॥
जो गुण है कभी नहीं छिपता या नहीं दबाया जा सकता ।
सागर नभ का प्रतिबिंब श्याम, है कभी न दूर हटा सकता ॥

यह स्वयं जानते हैं दैहिक भावोंका खेल निराला है।
जीवनमें इच्छाओं वाला, अपना मन ही लघु प्याला है॥
जब कभी कुभाव वासनाकी, लहरोंसे अधिक स्वयं भरता।
तो नृपति आपके वचनोंके, अनुकूल हृदय छलका करता॥
यह तो अपनी निर्बलता है, अपने मनका छिछलापन है।
तुम दूर करो हे नृपति! इसे, जिसमें मिटता यौवन धन है॥
मैं एक अकिंचन अबला हूं, तुम हो पाटन के महाराज।
क्या भला भली लगती तुमको, जो बात कर रहे यहाँ आज॥
तनमें मनमें इन प्राणोंमें, केवल मेरे इक मूर्ति वसी।
वह श्रमिक हृदय त्रिक्रम है, जिसमें श्रम की ही स्फूर्तिवसी॥
मैं उसके सिवा अन्यको भाई, पिता सदृश अपनाती हूं।
उसको कर प्रणय निवेदन मै फूली भी नहीं समाती हूं॥
उसकी अनुगामिनी बनकर ही, मैंने जगमें गुनना सीखा।
उसकी सेवाके हित पथकी कंकड़ियोंको चुनना सीखा॥
यह तन मन धन यौवन असीम, बुलबुला एक है पानी का।
रहती न निशानी है कोई, सिलसिला विनाश कहानी का॥
दृष्टान्त दिए जो भी वे सब, केवल जडता के द्योतक हैं।
सच्चे सिद्धान्तोंसे सुदूर केवल विभाव परिपोषक हैं॥
सत्यता, अहिसा-सदाचार, हैं विश्व सत्य जन हित रत हैं।
दुनियाके सभी दार्शनिक जन, हो जाते यहाँ एक मत हैं॥
जो मनो-मोहनी वस्तु, देख भी मन वशमें कर सकते हैं।
वे त्रिभुवनको अपने यशकी शुभ आभासे भर सकते हैं॥
इस लिए त्याग वादा-विवाद, नृप सदाचार अपनाओ तुम।
मैं तुम्हें पिता ही कह सकती, कुछ और न मनमें लाओ तुम॥

(सिद्धराज)

दोहा—सुनकर जशमा की तुरत, ऐसी सीधी बात।
सिद्धराजके हृदयमें, उठी रोष की बात॥

फिर सावधानता से पहले, मनके भावोंको सम तोला ।
कुछ उत्तेजक पर विनय पूर्ण, स्वरमें वह जशमा से बोला ॥
जशमे ! क्या यह जानती नहीं, मैं भाग्य विधाता हूं तेरा ।
जो तुझे रूप यौवनके ऐसे महा दम्भने है घेरा ॥
दो दिन बहार जब दुनियामें तो क्यौ न भोग भोगें सुख से ।
यह थोड़ा सा जो समय मिला, क्यों इसे विताएँ हम दुख से ॥
मेरे इन प्यासे प्राणोंमें है अरमानों की भीड़ लगी ।
मानस सागर की लहरोंमें सामूहिक है वड़वाग्नि जगी ॥
तुमको अनुकूल बनानेको, करता हूं हृदय निछावर मै ।
तेरे अलकोमें देख रहा, अपने भावोंका अंबर मै ॥
आराध्य देवि ! मेरी बन कर, मेरे महलोंमें आओ तो ।
मेरे युग नयन निकेतन में, निज रूप सुधा बरसाओ तो ॥
पूजा करने को आज प्रणय का साज सजाया है मैने ।
निज मन मंदिरमें सिंहासन, स्वयमेव बिछाया है मैने ॥
मुस्कान सुधा छलकाती सी, यदि तेरी स्वीकृति पा जाता ।
तो सबसे बढकर गौरवमय अपनेको धन्यभाग पाता ॥
कितने जन जिसके याचक हो अपना इच्छित फल पाते हैं ।
हो जाते हैं कृतकृत्य और, आदरसे गुण गण गाते हैं ॥
वह पाटनका नृप सिद्धराज, तेरा याचक है बना हुआ ।
तेरे स्वरूपकी भाषाके शब्दोंका वाचक बना हुआ ॥
सुन्दर समीरके झोकोंसे, छहरी है मधुरिम स्वर लहरी ।
युग युग की प्रणय-साधनाकी, यह पुण्यपताका है फहरी ॥
आनँद सुधारस बरसा है, मिलनोत्सव आज सुभग आया ।
मधुपोंने अपने गुंजनमें इस शुभ अवसरका यशगाया ॥
पर्वतसे उतरी सरिता पर भी, अपना दृष्टि प्रसार करो ।
मम हृदय रूप रस सागर में, आकर तुम सतत विहार करो ॥

(जशमा)

दोहा—सिद्धराजके सुन वचन, कर कुछ श्रेष्ट विचार।
भृकुटि चढाकर यों कहा, सुन ओ नर सिर्दार ॥

राजन् ! बतला बिजलीके भाग्यको, भला कौन घड़ सकता है।
किसने निर्माण किया जल वेगका, दृष्टि कहीं पड़ सकता है॥
दाएँ वाएँ अथवा विलोम निज, पथसे वायु हटी किससे।
नभमें पगडंडि बनानेकी, अनहोनी बात घटी किससे ॥
मुझसी सुसिंहनी जातीके, सुसतीत्वका भी है हाल यही।
जीते जी निज तनसे मिलते, हरिकी मूछोंके बाल कहीं ॥
मणि दे न भुजंग स्वजीवनमें, सति महिलाकी भी बात यही।
त्रिकम पति अर्पण है जशमा, इसकी प्रभुताकी जात यही ॥
सहशक्ति समृद्धि सचक्रपति, चाहे रख रूप कंदर्प कभी।
सारे सतीत्वके अभिमुख यह, रहते नजरोंमें न गण्य सभी ॥
जैसे पारद पच सके नहीं, औ सूखा वाँस नहीं झुकता।
जशमा फिर चाहे दरिद्रा है, इसका भी सत्य नहीं झुकता ॥
आराम[1] गगन सदृश राजन् !, शशे शृंग[2] समान न चाह करें।
मै रहूं अन्त लौ त्रिकम की, आशा की डाह न राह भरें ॥
शारद माँ को बहका न सके, धरती तलमें क्या कोई यहाँ।
कर सकता है कंगाल कौन, बस लक्ष्मीको इस भाँति कहाँ ॥

(सिद्धराज)

दोहा—जशमा मेरे महलमें, अनुपम हो झंकार,
उत्तम नाटक मंडली, कर बत्तीस प्रकार।

मानो राज भवनपर ये, बस चार चाँद से जग जाते।
स्वर्ग तुल्य कविगण कहके, उपमा करने हैं लग जाते ॥
लघुवयस्क गायक वृन्दोंकी, गल लोच चित्त हर लेती है।
स्वर-लहरीमें लय होते ही, प्रभु ओर आँख कर देती है ॥
तब नहीं खिसकने पाता है, सुन पाया है उसको जिसने।

---

१ बाग़। २ ख़रगोशके सींग।

चख सका न जो गाँधर्व वेद, रस जन्म वृथा खोया उसने ॥
इस कुटिया बीच धरा क्या है, चलके स्वधाम निवास करो ।
ताले विधिके खुल जायँ वहाँ, छत्तिस विध भोजन खास करो ॥
हैं छप्पन भोग रसोईके, जन आस्वादन करनेवाला ।
अपनेको समझेगा वह फिर, अतिभाग्यशालि सबसे आला ॥
महिलाएँ जो भी वहाँ रहें, नख से शिख तक शृंगार किए ।
यदि मान जाय कहना मेरा, सुख स्वर्ग समृद्धि निहार हिए ॥
इन मौजके चमक सितारोंसे, क्यों औरोंको न चमत्कृत कर ।
यह स्वर्णिमसा सुन्दर शरीर, नहीं रचा है ढोने मृणमत पर ॥
यह सिद्धराजसे साथी सह, कृत कृत्य उपार्जन करनेको ।
यह मान जाय मेरी जो कुछ पाए सब नव निधि करनेको ॥

(जशमा)

दोहा—राजन्! पैत्तिक ज्ञानवश, विन विवेक अभ्यास ।
वातें कर डालीं सभी, वृथा-मिला आभास ॥

जिसके मनमें सज्ज्ञान न हो, सुन वही अनाडी रीझेगा ।
पर जो हो कोई समझदार, ऐसे सुखमें न पसीजेगा ॥
जब वनमें मोर मिल कूकेंगे, तब वाद्य सभी छिदके छनते ।
कोयल शुक ताल समक्ष गीत, सब अन्य उपेक्षासय बनते ॥
भव-गीत विलापके सदृश हैं, जग-नाच विडंबन मात्र सभी ।
बत्तिस आभरण सतीत्व विना, सब भारभूत बन जायँ तभी ॥
सब वैषयिक अर्थकाम सुख, सदृश दुख शूलके पाता है ।
सौन्दर्य त्यागमय सादे पर, मम मन मोहित हो जाता है ॥
प्रकृतिके गान समझने पर, ये काम कुगायन ढोंग सभी ।
चोचले से यह कुल्टा के, लगते हैं बुरे प्रतीत तभी ॥
मै भ्रष्ट विषयके गीतोंका, क्यों भार उठा कर क्षुद्र बनूं ।
रावण समान आश्रित कुसंग, अपने को गिराके कुमौत हनूं ॥
इन छल छिद्रोंसे बचनेको, वन कुटिया स्वर्ग विमान मुझे ।
इसको मैं समझती हूं उत्तम, लग अन्त निवास अमान मुझे ॥

राजन्! दीनोंके घर पर ही, निर्विघ्न दिवाली दिवस सदा।
हो जीवन मंगलमय व्यतीत, फिर भागें वहाँ से सब विपदा॥

(सिद्धराज)

दोहा—भूपतिने तब क्षुब्ध हो, पुनः निवेदन कीन्ह।
नम्रभाव पूर्वक समी, तत्प्रति उत्तर दीन्ह॥

जितनी तव सखी सहेली हैं, वे राजसदन आजायँ समी।
सकुटुंब तेरी जाती कर दूं, तब दुख दरिद्र से मुक्त समी॥
मेरे सुख वैभवसे निजको, सम तरूद्यान सिंचवायेंगे।
तब सात पीढितक सबके, सब वे हरे मरे रह पायेंगे॥
निज मित्र सहोदर और इष्ट, सह बाँधव लेकर आजा तू।
महलोंमें डेरा डाल अभी, अनुकूल योग सब पा जा तू॥
तू बने प्रेमकी पात्रा तो, सारे कुवेर बन जाएँगे।
मैं क्षत्रिय हूं मेरी वातें, पत्थर लकीर सी पाएँगे॥
यदि समय पडे तब बनिया, तो हँस कर ही बातें टालेगा।
पर क्षत्रिय ही इक ऐसा है, रघुकुलकी रीतें पालेगा॥
विधिने है यही विधान रचा, प्रण इसका कभी न टल पाए।
तन मन धनसे न्यौच्छावर हो, चाहे तनसे प्राण निकल जाए॥

(जसमा)

दोहा—ओ राजन्! मतिमान् हो, कर विचार के काम।
श्रमजीवी हैं जानता, कुटी पुरंदर धाम॥

मज़दूर ओडकी नज़रोंमें यह कुटी फूँसकी भाती है।
ऊँचे महलोंपर से यह तो, गिर पड़नेका भय खाती है॥
इन महलोंकी रचना सारी, जो रक्तनिधन से सिंचित है।
ज़ीने से पैर फिसल जाए, सन्देह न इसमें किंचित है॥
हो अंगभंग कटि-हस्तादिक, पीडित तन कष्ट उठाता है।
फिर कर मज़ाक आवे ज़र्राह, मरहम पट्टी कर जाता है॥
महलादिकके रहने वाले, मुँह पर दो आँखें होने पर।
फिर भी न मत्त वे देख सकें, प्रायः चलते अंधे बनकर॥

महलोंकी अपेक्षा से सदैव, यह मुझे झोंपडी भाती है।
नहीं गिरने पडने का कुछ डर, चोरोंकी भीति न पाती है॥
नहीं अँग भँग का कुछ भी, भय जनता निश्शंक यहाँ रहती।
नित चहल पहलसे कालक्षेप, जीवन चर्या सुखसे बहती॥
वैलासिक भोग अपेक्षासे, मट्टी ढोना सौभाग्य मुझे।
रस आस्वादनमें भरे हुए, प्रासादोंका बड़भाग तुझे॥
श्रमजीवी होनेसे मुझमें, सुख झलक अनन्त समाती हैं।
ऐसे पन से न कष्ट होते, हर समय शान्तितति भाती हैं॥
पत्तोंकी कुटियाके आगे, उस निम्ब द्रुमकी छाँह तले।
सुन्दर गैया है बंधी हुई, वन कामधेनुकी भाँति पले॥
सब मनो कामनाएँ मेरी, उससे पूरी हो जाती हैं।
सच्चे सुखकी है खान यही, जो कभी न घटने पाती है॥
कम है दरिद्रता सब ही से, इसमें अवनति या व्यसन कहाँ।
जिससे दुर्गतनारायण[1] की, रहती है कहानी अमर यहाँ॥
महलोंकी उन्नतिमें अवनति, पड स्पष्ट प्रगट हो दिखलाई।
उत्तुंग पतित गति गर्त कार्य, नहीं कभी मुझे रुचता भाई॥

(सिद्धराज)

दोहा—जशमा! सचमुच तू रही, विन विधिवत् संयोग।
अब तक वंचित मौजसे, अशन-पान-सुख-भोग॥

इस सूखी जौं की रोटी में, औ 'रूखी, कह क्या वाद धरा।
प्रासादोंमें आकर चख तो, ताज़े मेवों का स्वाद ज़रा॥
अमृतसे अधिक लगें मीठे, आशाएँ अमर करो पूरी।
हों सिद्ध हस्त ये सब पदार्थ, होते हैं प्राप्त सतत भूरी॥
कर तिरस्कार ऐरावतका, दिन रात द्वारि हाथी झूमें।
तू बैठ सुनहरी पीनसमें जब, कभी भी विहरे या घूमे॥
तब खुला हुआही समझोगी, आनँद भरा बाज़ार वहीं।
मैं अतिशय दुःखित होता हूं, तुझे ढोते मट्टी देख कहीं॥

---

[1] दरिद्रनारायण।

जिस दिन शिबिका पर बैठेगी औ कर विहार दिखलाएगी।
उस दिन मेरे मनकी कलिएँ, हो कर जालक खिल जाएगी ॥
मेरे उर बात समाई यह, मैं दीनोंका दुख दूर करूं।
अपना वैभव सुख दूं उनको, सब अन्तरायका चूर करूं ॥
सबसे अभेद व्यवहार धरूं, मम जन्म लोक हित हेतु बना।
सब भोगोंको देकर मानूं, जीवन मेरा सुख सेतु घना ॥
है प्रकृति-सिद्ध स्वभाव यही, अपनी पटनार बनाऊं तुझे।
निजको मानूंगा धन्य तभी, बस कर देवी! कृतकृत्य मुझे ॥
तुझपर हैं आंख लगीं मेरी, सहमत अवलंबित हो जाओ।
ऐश्वर्यस्वामिनी बन जाओ मुझको प्रसन्न कर सुख पाओ ॥

(जशमा)

दोहा—राजन्! क्यों उन्मत्त बन, करने लगा प्रलाप।
सभ्य जगत्से पतित तू, रुचे न शुभग कलाप ॥

यह रोटी दाल सुहागन है, क्या बात आपको ज्ञात नहीं।
जौ की रोटी के खानेसे नहीं पेट भैस सा बने कहीं ॥
पूरी पकवान मिठाई में, बहु दाम खर्च आ लगते है।
सनमें अति अवगुण होते हैं, गुण दूर एकदम भगते हैं ॥
राजन्! यह ओडन तो, अपने जीवन को धन्य सदा जाने।
बस खाकर राबड़ी छाछ, मात्र सादी गुज़रान भली माने ॥
मीठे-पकवान मिठाईकी, नहीं चाह स्वप्नमें भी रहती।
कपिला गौ-भूरी भैस, अजा व्यवधान रहित घर पर रहतीं ॥
वे मन भर तक दें खूब दुग्ध, छ घड़िया भरती पूरी है।
यह पतला दूध नहीं देती, यह ऐसी महिषी भूरी है ॥
उत्तम बडभागी पशुओंसे, घी दूधका दरिया चलता है।
प्रिय-छाछ-अन्न वस्त्रादिकसे, परिवार ओड़ सब पलता है ॥
इन दो सजीव आत्माओंसे, सब रहें अनुग्रह भारी हैं।
ये दोनों कल्पलता जैसीं, औ कामधेनु सी प्यारी हैं ॥

---

१ खिली हुई कली।

सादेसे भोजनके समक्ष, आहार सरस तनु रोग भरें।
चिकना भोजन खाने वाले, घर वैद्य बुला सहयोग करें ॥
रूखी सूखी खाने वाले, तो रोगहारि-घर जायँ नहीं।
सौभाग्य-अर्थ-श्रम जीवनके, अवतार लेत हैं आप कहीं ॥
इस सादे भोजन से आगे, बढना न चाहिए बस हमको।
क्यों तले मले आहार खायँ, हो व्याधि बुलाएँ भी यमको॥

(सिद्धराज)

दोहा—जशमे! यह क्या कररही, निज जीवन संघात।
त्यागी जीवनवान्की, करे विरत सी बात ॥

सचमुच तू अल्हड़मतिया है, जब हस्त सिद्ध सामग्री सब।
तब वस्तुके उपयोग विना, क्यों वंचित हो रहती है अब ॥
जीवनका भरोसा क्या कुछ है? खाएँ पीएँ वह अपना है।
परलोक भला किसने देखा, खाली तपमें क्यों तपना है ॥
"यावज्जीवेत्सुखं जीवेत्" ऋण लेकर भी घृतको पीना।
तन भस्मिभूत हो जानेपर, फिर मर कर कैसे हो जीना ॥
ये वचन वृहस्पति धिषण कहें जो चारुवाक मत कहते हैं।
नहीं कोई चिन्ह रह पाता है, परलोक कहां पर लहते हैं ॥
इस लिए पास मेरे जो सुख, या समृद्धि के ढेर लगे।
व्यवहारमें अपना भाग्य बढ़ा, तू जाकर लूट उन्हें सुभगे ॥
जो चाहे वही वहाँ पाले, निधियोंकी नहरें वहाँ बहें।
दिल खोल लगा डुबकी उनमें, फिर गई जवानी कहाँ लहें ॥
यौवनकी सभी उमंगें ये, जब बनके बाढ़ उतर जाएँ।
तब तेरे हाथके छुए कोई, दो बेर तलक न कभी खाएँ ॥
हीरे माणिक्य जटित भूषण, चल पहन उन्हें फिर मान खुशी।
भारी सी चमक दमक से फिर, दरसाएगी ज्यों चन्द्रमुखी ॥
इस स्वर्णिमाभ सी देही पर, बहुमूल्य वस्त्र आभूषण सब।
नभमें तारागणके समान, शोभाप्रद दीख पडेंगे तब ॥

---

१ वैद्य।

तेरा अनुपम लावण्य रूप, बन ललित लहर लहराएगा।
तब देवदानवादिक का जी, लख ललना लट ललचाएगा॥
अनुभव करके तू देख ज़रा, इसमें क्या हानि भला तेरी।
फिर चार धाम इस देहान्तर, पाते लगती क्या है देरी॥
लो सिद्धराज जैसा नरेश, जो मानी और प्रतिष्ठित है।
आकांक्षा तेरे उत्तरकी बोलो, अब शीघ्र अधिष्ठित है॥

(जशमा)

दोहा—त्याग भाव सुन्दर विमल, सज्जन चित्त बसाय।
अतिशय गौरव अचलसे, जीवन स्वच्छ रसाय॥

गीत-संख्या १

त्यागी जीवन ही से राजन्! होता बेड़ा पार—
होता बेड़ा पार राजन्! त्यागी जीवन ही से—
त्यागी जीवन हीसे राजन्! होता बेड़ा पार॥ टे०॥

यत सतीत्व पन केवट इसमें, चलती नर तन नाव।
दर्शन-ज्ञान-प्रेरक चप्पे हैं, बल चारित्र प्रभाव॥
भारी धार भयंकर वाही,
जैसा है संसार, राजन्!॥ १॥

आर पार दो इसके तट हैं, लोक और परलोक,
क्षणभंगुर सी आयु तरंगें, बहें सदा बिन टोक।
कर्म चक्रसे यही बचाएँ
पाएँ सीधी धार, राजन्!॥ २॥

पुण्योपार्जनसे हलकी हो, ऊपर ऊपर आवे।
पापों से अतिभारी बनकर, धँसे रसातल जावे॥
भूलजाय तब खाना पीना,
हो जाएँ लाचार, राजन्!॥ ३॥

एक जन्मके सुखके कारण, क्यों खो दें परलोक।
रोग वणिक् ग्रस-रक्त ऋणीका, चूसें ज्यों बन जोक॥

यही अनल भस्मासुर भारी,
कोसें बीसों वार, राजन्! ॥ ४ ॥

स्वतः सिद्ध प्रत्यक्ष बात यह, देखें जगके बीच,
विचलित हो सर्वज्ञ शास्त्रसे, भूलें नास्तिक नीच ॥
मात्र प्रपंच मान मानसिक
कायामें संचार, राजन्! ॥ ५ ॥

अल्हड़ मतिए सीधे सादे, विषय वासना हीन ।
भोले भाले चतुर प्रपंची, धर्म असुरलें छीन ॥
व्याध तुल्य ये जाल बिछाकर,
लें फन्दे में डार, राजन्! ॥ ६ ॥

प्रकृति सिद्ध हमारा सब कुछ अच्छा यह दर्शाया ।
टीप टाप कर अनुचर कामी, अन्त समय पछताया ॥
पातिव्रत खंडित करवाना
खांडे की सी धार, राजन्! ॥ ७ ॥

स्वतः प्राकृतिक सुन्दरता जो, उसमें बसें मयूर ।
वस्त्राभूषण धारण करना, उनको नहीं जरूर ॥
कभी प्रसंगवशात् न आता
सिंहोंको शृँगार, राजन्! ॥ ८ ॥

है सतीत्व ही निर्धन जनका, भूषा-वेश-शृँगार ।
इसी भाँतिसे नवरस लगता, पातिव्रत झंकार ॥
दिवाकाल रविके उपभासित
जैसे चन्द्राकार, राजन्! ॥ ९ ॥

घरमें मोटा तन्तुवायका बना हुआ परिधान ।
करे शक्ति-सम्पत्ति अथवा कीर्ति अमर प्रदान ॥
मूल्यवान् भड़कीले कपड़े
गुंडोंका व्यापार, राजन्! ॥ १० ॥

बहुमूल्य वस्त्राभूषणके, धारक चन्द्र चकोर ।
उनके पीछे उन्हें चुराने, लगे रहें ठग चोर ॥

कभी कभी वे निर्घृण डाकू,
देते भी हैं मार, राजन्! ॥ ११ ॥
परंच मेरी गुँजा की, कंठी चोर न लेते।
इसका काला भाग चोर का, मुँह काला कर देते ॥
उस सबको भी वेच खोच कर
पाए ना आहार, राजन्! ॥ १२ ॥
मूल्यवान् हीरे रत्नादिक, सर्जे आपको जायँ।
अजरामर गुँजाकी कंठी, कंठ हमारे भायँ ॥
रक्ताक्षी रखती रखवाली,
रहती कंठागार, राजन्! ॥ १३ ॥
इन्हें धारणे की बस हमको, कुछ भी चाह न होत।
है अमूल्य धन यही हमारा, कोई न इसको खोत ॥
सच मुच निस्पृह जगद्वंद्य
होता वारंबार, राजन्! ॥ १४ ॥

(सिद्धराज)

दोहा—जशमा! यह तो दे बता, क्या तव सुन्दर वरराज।
कैसा वली पराक्रमी, देखूँ वह नरराज ॥
सच मुच तुझसी महिला द्वारा घर उसका नाक[1] विमान बना।
वह पाकर अनुपम नारी रत्न रहता निर्विघ्न महान बना ॥
वास्तवमें जिसकी पत्नी हो, निष्काम अतुल सौंदर्य भरी।
निश्चय उस देवी मानवके, सम्पूर्ण सुखों की राशि भरी ॥
अपने वैभवको वह दारा, सर्वस्व सतीत्व समझती है।
सीता-सावित्री-ब्राह्मीसे, गुणमें न कभी कम रहती है ॥

(जशमा)

दोहा—राजन्! देखो वह खड़ा, करमें लिए कुदाल।
पुष्ट-कटी पाटी बँधी, है मम सत्ता का काल ॥
पति मेरा बलवान, रूपराशि गुणखान।
मै उसपे वलिहारी जाऊं, समझूं प्राण समान ॥ टेक ॥

1 स्वर्ग।

भूतलमें जिस समय ज़ोर से, इसका पडे प्रहार ।
शेषनाग भी थर थर काँपे, भागें दिग्गज हार ॥
हिल उट्ठे दिक्पाल, बलसे पडे कुदाल—
धरतीका हृदय हिलाने को, इसमें है अभिमान ॥ १ ॥
असुर और सुर मिलकर, अपना मार्ग नापने लगते ।
घुलक घुलक्कड पूँछ दबाकर, सन्मुख से है भगते ॥
भासत भुजा विशाल, नाहर सी चल चाल ॥
तेज झलकता जिससे भारी बलका पुँज महान ॥ २ ॥
मस्तक पर जिसके फूलोंका, सुंदर सेहरा भाय ।
गूँज गूँज करते मँडराते, भ्रमर आरती आय ॥
लिया शक्ति अवतार, उद्यम शील अपार ।
अपनेको मैं उस पर वारूं, मम मनका भगवान ॥ ३ ॥

(सिद्धराज)

दोहा—ओ! जशमे! अब तू ज़रा, सन्मति से ले काम ।
इस श्रमजीवी से भला, कहाॅ मिले आराम ॥

अयि! वह तुझसी सुकुमारीसे, श्रम करवाकर अन्याय करे ।
तुझ पर न प्रेमकी दृष्टि ज़रा, संसारके सन्मुख देख धरे ॥
तेरे सद्गुणकी संभवतः की, होगी क़दर कभी इसने ।
मिल रहा धूलमें नारि रत्न, नहिं इस पर ध्यान दिया इसने ॥
मज़दूर निपट पूरा गवाॅर, हीरा तू उसके हाथ लगा ।
पर उसको कुछ पहचान नहीं, इसलिए धूलके साथ लगा ॥
आया मै जौहरी क़दरदान, अब झट पट तुझको पा लूंगा ।
इस भाँति भला माणिक्य, कभी क्या मट्टीमें मिलने दूंगा ॥
ये चमकदार हैं स्वर्ण महल, तैयार तुझे है रखनेको ।
तेरे द्वारा होंगे जगमग, तब सभी आऍगे लखनेको ॥
स्वर्गीय सुखोंका मै तुझको, पूरा उपभोग कराऊंगा ।
जी भरनेसे थक जाए तो, मदका प्याला छलकाऊॅगा ॥
इस कसी टोकरीके सिवाय, किस सम्पत्ति पर रीझ रही ।
स्वर्गीय सदन में रहनेसे, क्यों इतनी तू है खीझ रही ॥

चल अपने पद अरविंदोंसे, मंदिरको सजा दे न हो मूक ।
इस भोग-योगको पाकर अब, मत रह वंचित यह न कर चूक ॥
तुझसी मतिमतिके लिए, मात्र संकेत अलं इतना बस है ।
कर दिया अतः उद्धार तेरा, अब पाले शीघ्र अमर यश है ॥

(जशमा)

दोहा—परदेशी पथभ्रष्ट नृप !, लदा पाप का भार ।
उदयाचल सम अचल मै, नहीं डिगूं तिल वार ॥
झूंठों के पद नहिं कभी, भूतल पे टिक पायँ,
प्रत्युत रहते डोलते, खिसके हुए दिखायँ ॥

मुझको सम्यक् श्रद्धान यही, विश्वास दिलाता जाता है,
इसके अतिरिक्त अपर मानव, मल कीट दृष्टिमें आता है ।
इस कच्चे घरके विना, और सब ऊँचे ऊँचे महल बड़े ।
मुझको ये ऐसे दीख पड़ें, मानो मल-मूत्रागार खडे ॥
इसके ही जीवन पर मै तो, अपनेको निर्भर मान रही ।
इसके विन भाई-बापू सम, जन-अखिल विश्वमें जान रही ॥
यदि सत्य बातके कहनेमें मैं, जरा नहीं घबराती हूं ।
तू भी मेरा भ्राता ही है, यह स्पष्ट तुझे जितलाती हूं ॥
हैं नग्न सत्य कहने वाले, भय सत्ताका यहाँ लेश नहीं ।
आकुल व्याकुलता रहती है, दूषित प्रसगमें मात्र कहीं ॥
फिर मुझे कभी संकोच नहीं, बस सत्य बोलते रहने में ।
है उचित निधनका क्या बिगड़े, नित सत्य सत्यके कहनेमें ॥
हॉ धनी सत्य यदि बोल पड़े, तब खुलती उसकी पोल वहीं ।
रह पाई कभी सचाई ना, घुस पर्दे में गुम-खोल कहीं ॥
प्रगटे कपासमें आग सरी, मेरे सतीत्व की ज्वाल जभी ।
कर देगी नाश विरोधी का, छोडेगी शेष न नाम कभी ॥

(सिद्धराज)

दोहा—जशमा ! राजा बहुतसे, रहते मम आधीन ।
आज्ञा मान सदैव सब, होते सेवा लीन ॥

आज्ञा उल्लंघन करनेपर, कितने ही कारावास पड़े ।
हैं बड़े बड़े भट महारथी, योद्धा शासनके तले खड़े ॥
सिर पर धारन करनी पडतीं, आज्ञाएँ इनको सारी हैं ।
काँपें थर थर आतंक तले, जगके सब नर-औ नारी हैं ॥
सहनेमें ओजके असामर्थ्य, जनवर्ग आजका यह मेरा ।
इतने पर भी अपवादों का, ले रहा बोझ हूं मै तेरा ॥
मैं मस्तक पर रखकर अपने, झेलूंगा तेरी बातें सब ।
पाटनके अन्तःपुरमें तू, शोभा स्फाति कर पाएजब ॥
यदि प्रस्तुत हो जाए तब तो, मै भाग्यशालि कहलाऊँगा ।
फिर चाँद-सूर्य पर्य्यन्त समीको, आज्ञा वहते पाऊँगा ॥
मुझ क्षत्रियकी इन बातोंमें, नहीं कमी कमी कुछ आएगी ।
चल पूर्वक मैं कह सकता हूं, इससे बढ़कर क्या पाएगी ?
मिल रही छूट इतनी तुझको, ले सके अन्य जन यहाँ नहीं ।
यह सौदा सफल बनालेतूं, इस साई को मत नट न कहीं ॥
उत्तम प्रबन्ध द्वारा रह कर, सचमुच तू मानिनी बन जाए ।
अतिशय रमणी-प्रमदा जैसी, ललना सुकामिनी मन भाए ॥

(जशमा)

दोहा—ओ कुदृष्टिवाले नृपति, मत रख झूठा चाव ।
सत्ता तन पर चल सके, आत्मा पर न दबाव ॥

यह आत्मा इस विधिके तेरे, आदेश ग्रहण कर सके नहीं ।
व्यवहार धर्मसे पतित बात, प्रकृति विरुद्ध जँचती हैं यहीं ॥
करनेके लीए मान्य इसको, स्वप्नान्तरमें असमर्थ रहे ।
परमार्थ लक्ष गत दृष्टि कर, इसलिए इसे नहिं कोई चहे ॥
राजा चाहे कितना भी हो, वैभवशाली या क्रूर कहीं ।
चिद्वृत्ति परायण मानेगा, उसकी पापाज्ञा कभी नहीं ॥
राजन्! शायद पीकर विजिया, अपना मस्तक क्यों खोता है।
विचलित प्रलापसा कर करके, पापोंके बीज क्यों बोता है ॥

पीकर विषको क्या स्वाद और, परिणाम परखना चाहता है।
इन कलुषित-कुविचारों द्वारा, कर घात कुशल निज चाहता है॥
शुभ रत्नजटित अपने महलोंमें, जाकर तुम विश्राम करो।
कर शपथ भूल कर कभी स्वप्नमें, अशुभ कर्मका दम न भरो॥
मत ऐसा दुस्साहस करना, जगती जिससे सन्तापित हो।
उद्योग अशक्य नहीं करना, सन्तोष किए कितना हित हो॥
इन अन्तिम बातों को नृप! दिन रात सदैव याद रखना।
परनारीमें माता भगिनी, जैसी ही दृष्टि सदा रखना॥

(सिद्धराज)

दोहा—जशमे! विसय है मुझे, तेरा चित्त कठोर।
देख दया है आ रही, कैसी नारी ढोर॥

तव हृदय वज्र परमाणुका, तू कहे कि यह नहीं टूटेगा।
यह याद रहे दाम्पत्य-मयी, नाता अवश्य ही छूटेगा॥
विन बिछुडे उससे नवविधि का, तारा यह तुझको कब वरता।
वास्तवमें अनृतकुशल अर्थ, जन अनधिकार चेष्टा करता॥
झूठा सुख झूठी आशासे, बन सदा स्रोतसा बहता है।
फँसकर आसक्तिके द्वारा, नर पिंड कीचमें रहता है॥
यह पड़ा अवटमें स्वयं भूल, फिर विलापात करता सहता।
सदसद्विवेकके विना गिरा है, मोह कुँभीमें पच रहता॥
धन-धाम, काम-वैभव आदिक, बस काम नहीं कुछ आएगा।
इन आँखोंके मिच जाने पर, सब ठाठ स्वप्न बन जाएगा॥
क्यों भोग न करले जीते जी, सब पड़ा यहीं रह जाता है।
चिद्वृत्तिमान्‌के ही मनमें, ऐसा विचार उठ पाता है॥
कीड़ा भी चल कर नीचे से, ऊपर तक दौड़ लगाता है।
निकलो दरिद्रकी चुँगलसे, तब सफल जन्म कहलाता है॥
सत्ताके शृंगाचल पर जा, यह उच्चासन को जाय गहे।
अन्यथा मनुज पशुमें सचमुच, तू ही कह क्या कुछ भेद रहे॥
पशुतुल्य समानावस्थामें, जशमे! रहनेकी भूल न कर।
यदि तू मेरी वन जाए तो, पद वृद्धि प्राप्त हो भूतल पर॥

(जशमा)

दोहा—पता नहीं नरपति! तुझे, थे जग जन वह कौन।
शूर्पणखा भी थी गई, वृद्धि करन पद जौन॥
नाक कान कटवा दिए, बन्धुनाश किया आय।
नष्ट किया सर्वस्व तब, लंक द्वीप तक जाय॥

कल कौन जानता है राजन्!, अपने सतीत्व पर मर मिटना।
सन्नारीका कर्तव्य यही कर, पति-पद बोध पाठ रटना॥
नहिं जिसे भुलाया जा सकता, सर्वायु तक है कभी नहीं,
मेरी सम्मतिमें थोडी सी अब, शेष आयु रह गई कहीं॥
इस थोडेसे जीवन के अर्थ, मत विपदाका आवाहन कर।
है भला इसीमें अब तेरा, अच्छा चरित्र अवगाहन कर॥
वर्ना शिशुपाल-रावणादिक की, तरह ही धोखा खाएगा।
कुछ हाथ न पल्ले पडे अरे! बदनाम मुफ्त हो जाएगा॥
है मात्र मनुजका सच्चरित्र, प्रामाण्यपत्र समझा जाता।
साँसारिक जीवन उजलाकर, फिर स्वर्ग मोक्षमें पहुँचाता॥
चाहे तू राजा कहलाए, या महाराज पदवी तेरी।
जब मौत दबोचे पंजेमें, उस समय न होगी कुछ देरी॥
फिर अन्तिम समय दुराचारी, मल हाथ देखता रहता है।
मुँह अपना गिरहबानमें दे, रो रो के कलपता रहता है॥
जन्मान्तरसे जो पुण्य पुँजकी, थैली लेकर थे आए।
खाली करदी कर पाप तापके, वेग स्वयं बह कर जाए॥
"कः खलु सेतुबन्धनानोदक", यह नीतिवचन क्या कहताहै?।
उस समय लाभ क्या पुल डाले से, जहाँ नहीं जल बहता है॥
इतना अवश्य ही समझ और, निज मौतसे न धोखा करिए।
नर तन पाकर अब हे महीप!, करनेसे पाप सदा डरिए॥

(सिद्धराज)

दोहा—क्या पति तेरा है यही! या किए कई विवाह।
रखती क्यों पति नामपर, मर मिटनेकी चाह॥

हर्म्य न बढ़कर उटजसे, है यह तेरी भूल ।
यौवन मुक्ताकी झलक, डाल न इस पर धूल ॥

मेरे मनका नद उमड़ा है, तू बाहुपाशमें ले समेट ।
नहीं कभी अलग हो सके, फेर वक्षोज बाँधमें दे लपेट ॥
जिससे मैं इस असफलताकी, गंभीर हानिसे बच जाऊँ ।
अपने प्राणोंका सुमन-सुरत, संकोच-विकोच यहीं पाऊँ ॥
यह अपनी भेंट चढ़ा दी है, सचमुच ही चरणोंमें तेरे ।
मुद-भरी मनोरथ मालाको, रच कर अर्पित कर तू मेरे ॥
तब तक आराम नहीं होगा, जब तक स्वीकार न कर पाओ ।
नहीं जाने होनहार कैसी है, मेरे मुँह न कहलवाओ ॥
अपने अच्छे दिन चुनकर रख, जिससे न हानि कुछ हो पाए ।
इक रोम मात्र तक भी बाँका, होने का अवसर न आए ॥
अब भलीभाँति करले विचार, आवश्यकता ऐसी न पड़े ।
फिर तेरे साथ कहीं मुझको, करने न पड़ें व्यवहार कड़े ॥

(जशमा)

दोहा—राजन् ! चौदह लोकमें, पतिव्रता-धन-सार ।
अग्नि समक्ष परिक्रमा, लीं विवाहमें चार ॥
अब तक मेरे शीर्ष में, आते यही विचार ।
चक्र सुदर्शन की तरह, घूम रहे संस्कार ॥

इसका तो स्मृति-पथ में यह ही, मोटा सा आशय दर्साता ।
पति ही तो है सर्वस्व मूल, सत्तत्व धर्मका बतलाता ॥
या तो खेलूं पति-अंक मूल, या पावक-मध्य समाऊँगी ।
है जिससे पाणिग्रहण किया, मैं उस पर वारी जाऊँगी ॥
मैं धर्मकी नारी उसकी हूं, तब अघपत्नी नहीं हो सकती ।
गिर कर गिरिवर की चोटीसे, तन नदको समर्पित कर सकती ॥
विषधरके मुखको चूम सकूं, कोई सिंह गुफा तक ले जाए ।
पर मेरे इस मन मंदिर में, पर पुरुष-प्रवृत्ति न घुस पाए ॥

मेरा जीवन आधार वही, प्राणोंकी प्रभुताका वर है।
तव इन प्राणोंके साथ साथ, यह तन मन तक न्यौच्छावर है॥
इस भवमें कोई और दूसरा, इस तनका मालिक़ नहीं होगा।
भर्तार विरोधी अरिका मुँह, जगमें काला करना होगा॥
मेरा विश्वास अटल है यह, दाएँ या वाएँ हो न कभी।
यह महिलाओंका स्वाभिमान धन, इसमें धूप न छाँह कभी॥
मैं चरण सेविका त्रिक्रमकी विन, इसके क़मी न जी पाऊँ।
यदि ये न जगत् में होंगे तो मैं, अनल कुंड में ही जाऊँ॥
उन श्रीचरणोंका वास सदा, मुझको सन्तोष कराता है।
तव सन्तोषीके आस पास नहीं, पाप फटकने पाता है॥
चाहे नृपाल! तेरी सत्ता, कितना कराल पन दिखलाए।
लंबी चौडी हो कितनी ही, मुझपर डोरे नहिं लिख पाए॥

दोहा—जशमाने उस भूपको, किया और प्रतिवोध।
घोर कलंकित कर्मका, करती हूं प्रतिरोध॥

यद्यपि तूने अबतक अनेक, बलवान व्यक्तियोंसे की भेंट।
धमका-चमका-शोषित कर उनको भरता रहा सदा निज पेट॥
यह भ्रमणा खूब पुरानी है जो, सब पर तेरा लदा दबाव।
पर आत्मा सबने नहीं वेचा, जगके गरीब सब मनके राव॥
दधिके भ्रममें मत खा जाना, कहीं भूल-चूक-कर कभी कपास।
सव ठौर अंधेर नहीं होता, इन वातोंका रखना विश्वास॥
मै भ्रमणासे तुझको निकाल, उपकार चाहती यह करना।
परनारीको पासकने की, आशा न स्वप्नमें भी धरना॥
जव प्राण निकल कर जाते है, फिर वहाँ लौट कर नहीं आते।
फूटे घटके न जुड़ें टुकडे, टूटे पत्थर नहीं मिल पाते॥
ऐसे ही वायुके प्रवाह का, रुख़ नहीं बदला जा सकता।
इस भाँति कोई दानव-मानव, सुर-असुर न मुझको पा सकता॥
सागरसम मन गंभीर मेरा, जिसका कुछ पारावार नहीं।
भुजवलसे कौन पार होता, खिलवाड़ मौतसे हुआ कहीं॥

यदि सतायगा हम जैसोंको , सुख चैन न तू भी पाएगा ।
दुःख देकर दीन-गरीब सतीको, अपना नाश कराएगा ॥
जो अपनी प्रजाकी स्वतंत्रता, या धर्म छीनता जाएगा ।
रौरवमें नारक बन निश दिन, जूतोंकी ठोकर खाएगा ॥
तू राजा है तो क्या इससे, पति सार्वभौम मेरे मनका ।
वह दिग्विजयी वर वीर महा, भट सत्यवान् जीवन वनका ॥
सावित्रि सी उसकी सधर्मिणी, वीरांगना कहाती हूं ।
है पथिक एक पथके हम दो, निज पथका संग निभाती हूं ॥
अब भी है समय समझ दानव ! तेरी सन्मति किस गली गई ।
इतना कह जशमा लिए टोकरी, मट्टी ढोने चली गई ॥

दोहा—मुड़कर देखा तक नहीं, इसने किसी प्रकार ।
जैसे नहीं निहारता, साँप काँचली डार ॥

(राजाका निराश होना)

दोहा—सिद्धराज भी चल पड़ा, कर मुख पाटन ओर ।
अति निराश है चित्तमें, चल न सका कुछ ज़ोर ॥
रह रह कर मनमें यही, उसे आ रहा ध्यान ।
पीछे फिर फिर देखता, मत जाए यह मान ॥

सच मुच यह विषयवासना हीं, कुछ मरे हुओंको भी मारे ।
बुझ सके आग है सब प्रकार, कामाग्नि बुझाते बहु हारे ॥
यह अनल जहाँ भी लगती है, कुछ शेष वहाँ नहीं है रहता ।
धन-धैर्य-शौर्य-धर्मादि सभी को, भसमसात् होकर दहता ॥
नृप जड़ीभूत हो चलता था, चेतनता मानो निकल गई ।
आशाके सहारे जाता था, सत्ता-विचार-मति विकल दई ॥
वह क्षात्र-मान भी दलित हुआ, मुख दिखलानेको ठौर न था ।
इसके मन-आँखोंके आगे, घन अँधकार विन और न था ॥
वह संकल्पोंकी लहरों में, सविकल्प थपेडों में कुड़ता ।
जशमाका नाम ले लेने पर, सब होश ओस हो कर उड़ता ॥

गति इसकी थी अत्यन्त मंद, नहीं क़दम सोचकर धरता था।
प्रतिपल जशमाको स्मृति पथमें कर, मतिगति शून्य विचरता था॥
यह उसे भुलानेका प्रयत्न भी, प्रतिपल मनमें लाता था।
मनको अर्पण कर देनेसे, प्रतिपद निराश हो जाता था॥

(विचारों की लहर)

दोहा—सोलह आने था सही, उसको यह विश्वास।
जशमा ओडन है सती, वृथा है उसकी आश॥
दृढ़ वज्र मोडनेके समान, उसको अपनाना मोघ सभी।
तब भी उसका मन अनधिकार, चेष्टामें लगाता ओघ अभी॥
निश्चित औ वह था निर्विवाद, वह निज सतीत्वमें अटल खडी।
बालोंकी खाल उतार सकें, उस पर बश पाना कड़ी-कड़ी॥
वह है सुमेरुके तुल्य अचल, अपने विचार पर दृढ़ तर है।
बिल्कुल विचलित नहीं हो सकती,
हठ उसका अतिशय चढ़ कर है॥
युक्तिएँ हुई है सब निष्फल, कुछ काम प्रलोभनने न किया।
धमकी-चमकी बहुतेरी दी पर, उसका लरज़ा नहीं हिया॥
पर सिद्धराजके पास किसी, सामग्री की कुछ कमी नहीं।
उपचक्षु काला चढ़ा काम का, रही तभी कुछ सूझ नहीं॥
जीती व जागती जशमाकी, जीवन ज्योतिष्मय चमक छटा।
जी विह्वल सा हो उठा तभी, लखकर अपूर्व लावण्य घटा॥

(विचार ग्रन्थी)

दोहा—आया अपने सौधमें, ले निकृष्ट ख़याल।
उसके दिलपर हो गया, गहरा एक सवाल॥
जशमाको देखा है जबसे, हाथों ने हिलना छोड़ दिया।
गति पैरोंकी अति शिथिल हुई, मनने यह भण्डा फोड़ किया॥
सत्ता विचारकी शून्य पड़ी, जठरानल ठंडी हुई विकल।
खाना पीना तक भी छूटा, आँखोंसे निद्रा गई निकल॥
कानोंमें बहरापन आया, घुटनोंने कहा अब शक्ति नहीं।

वह मेरुदंड भी टूट पड़ा, कटि भग्न हुई गिर पड़ी कहीं ॥
अतिरिक्त उवासी लेनेके नहीं, और कहीं से आय रही।
लज्जा-विवेकके त्याग पत्रसे, चिन्ताही वलखाय रही ॥
नहिं मार्ग सूझ पड़ता कुछ था, अति-अगम चालके चलने पर।
सत्-मन-बुद्धि-आत्माकी ओर से, प्रत्युत्तर नहिं आने पर ॥
आसुर-सम्पत् की झपट हुई, पा अन्तिम उससे आश्वासन।
हरनेको प्राण ग़रीबोंके, कटि-बद्ध हुआ ले शस्त्रासन ॥
वलपूर्वक कर आधीन उसे, ओडोंका रुधिर वहाऊँगा।
चाहे अपकीर्ति मिले जगमें, पर इससे वाज़ न आऊँगा ॥

(स्वगत जशमा)

रजकणोंके रूप मानव!
उसीमें उत्पत्ति और समाप्ति जगके भूप मानव!
पंच तत्वोंसे वनी काया न कंचन-सी रहेगी,
सिद्ध होगा साम्यका कटु सत्य जीव अनूप मानव!
रजकणोंके रूप मानव! १
मोह, माया, लोभ, लिप्सामें गया जीवन न आता,
खोल अन्तर्चक्षु, मानव! वन न दादुरकूप, मानव!
रजकणोंके रूप मानव! २
क्या हुआ यदि भाग्य है विपरीत, किसका दोष? अपना,
छाँह शीतल कल द्रुमोंकी, आज मरुकी धूप, मानव!
रजकणोंकि रूप मानव! ३
क्रोध, निद्रा, काम, चिन्तामें पुरुष! भूला डगर क्यों?
धरा पुद्गलमयी यह है, नर अचर तद्रूप मानव!
रजकणोंके रूप मानव! ४
ढूँढता तू चर्च मस्जिद, मन्दिरोंमें मूर्ख! किसको?
मूक पशुओं, दीन दुखियोंमें 'प्रकाश स्वरूप' मानव!
रजकणोंके रूप मानव! ५

प्रार्थनाएँ हैं अनाथोंकी पुकारें श्रवणके हित
झोंपड़े असहायके हैं वंदनाके स्तूप मानव !
रजकणोंके रूप मानव ! ६

दोहा—जशमा लेकर टोकरी, लगी कामके राह ।
मट्टी ढोनेके लिए, किया सुमनसे चाह ॥
देखा न झाँक-मुड़कर उसने, सम नारक-कीड़ा ज़ान लिया ।
जैसे न देखते मलको त्याग, बस इस प्रकारसे मान लिया ॥
विष्टासे भी थे अधिक घृणित, उसके प्रलोभ जँचते इसको ।
निर्धनता और सतीत्व भाव, अपनेही प्रिय लगते इसको ॥
तन-धनसे बढ़कर सत्य, शील जाने यह पतिव्रता नारी ।
जीवन निर्मल सम और स्वच्छ, गंगा प्रवाह जलसा भारी ॥
यह निरालंब आकाशतुल्य, राजस-तामससे दूर रहे ।
मन काँसी जैसा वर्तन है, निर्मलतामें भरपूर रहे ॥
सैही-वृत्ति इसकी तो है, निर्दोष चरित्र सुवर्ण समा ।
भारी चिकने-पीलेपनको, कब छोड़ सके निर्लेपतमा ॥
यह हाल सतीका भी होता, देखा यह गया सदा अब लौ ।
सतियोंकी गुणमाला मौलिक, इनका स्तुतिगान करें कब लौ ॥

(छुट्टी और आत्म-निवेदन)

दोहा—साँझ हुई घंटा बजा, छुट्टीका उस आन ।
श्रमिकोंने भी कामका, छोड़ दिया झट ध्यान ॥
सिरसे फेंकी टोकरी, दिया खनित्रक छोड़ ।
झौंपडियोंकी राह को, नाता द्रुत लिया जोड़ ॥
कूएँके निर्मल जलसे फिर, मिल सबने क्रमसे स्नान किया ।
फिर पर्णकुटीमें आते ही भोजनका रसद-समान लिया ॥
रोटीके साथ रसोई में, तैयार मिरचकी चटनी थी ।
पी-खाकर भूख-मिटाते थे, बत्तिस ग्रासोंतक गिनती थी ॥
सबके सब छोटे और बड़े, आ अग्निकुंडके पास सभी ।
फिर लगे तापने साथ साथ, आती थी घरकी याद तभी ॥

कोई अपने निज वैभवको, स्मृतिपथमें ला दुहराते थे।
आ जाता था जब देश याद, मिल आँसू चार बहाते थे ॥
कोई दुर्भिक्ष याद करके, मस्तक धुनता या रोता था।
मालवकी ओर किसीका मन, वापस जानेको होता था।
करकरके सरण इष्ट जनका, हो जाते थे शोकाकुल तब।
मनको मसोस कर रह जाते, दुर्भगतासे[1] थे व्याकुल सब ॥

(जशमाका रुदन)

दोहा—घरके धंधेसे निबट, आ जशमा उस ओर।
सब जनको आकृष्ट कर, यों बोली कर जोर ॥
दुर्बल-दारिद्रय-अवस्था में, दासत्व प्राप्त नहीं हो कोई।
जीवन-अभिमान निरर्थक है, कायर-कंगाल न हो कोई ॥

(सबके सब)

सबके सब बोल उठे उस दम, तुम यह क्या बातें करती हो।
चेहरा उदास-मन क्यों मलीन, मज़दूरिन हो क्यों डरती हो ॥
निर्धनमें मात्र है स्वाभिमान, वह भी जीवित रहना चाहे।
डटने वाला नित स्वाभिमानमें, गति-विधिवत् बहना चाहे ॥
नहीं फर्क शानमें आ सकता, चाहे धारा उल्टी होती हो।
पर जशमे! तुम सब साफ कहो, क्यों अधिक अधिक ही रोती हो ॥
विपरीत कहा क्या कुछ तुझको, सब तेरी मददको हैं तैयार।
या तुझसे अघटित हुआ कहीं, तू हाल बतादे सब इस बार ॥

(जशमा)

दोहा—हे श्रमजीवी बान्धवो! दुर्घटना हुई आज।
यह अबला छेडी गई, अनधिकार अधिराज ॥
कीं छेडखानिएँ खुद नृपने, जाना सतीत्वको कुछ भी नहीं।
मर्याद-धर्म लूटा चाहे, सति-जीवन समझा तुच्छ कहीं ॥
उसके मनसे विषका सोता, निकला भुजंगसा बनकर है।
अब मेरी-अपने भर्ता और, तुम सबपर रक्षा निर्भर है ॥

---

[1] कंगाली।

मैं करती नम्र निवेदन हूं, है सतीत्व मेरा संकटमें ।
भ्राताओंसे यह भी कहदूं, तुम सबका जीवन झँझटमें ॥
अब मुझे आप सबको मिलकर, करना उपाय कुछ बचनेका ।
हम श्रमजीवी-निर्धन-निर्बल, बल उसे सैन्य-धन रचनेका ॥
हम खाली हाथ अशक्त और, उसके हाथों बल मारण है ।
मारण शक्तिसे डरा रहा, कर शाक्तिक साधन धारण है ॥
हम वेघर हैं सब बेदर है, वह जनबल पूर्ण कहाता है ।
पुर-बल-जनके मदमें बहकर, प्रस्तुत हो हमें बहाता है ॥
मेरे पीछे वह बुरी तरह, अब धोकर हाथ पड़ा हुआ है ।
यह विषय अहिंसा-हिंसाका, यों नृप-जनता का झगडा हुआ है ॥
हम प्रजा-सिंह विक्रमयुत है, अपनी स्वतंत्रता चाहते हैं ।
सत्ता कहती यों दास बनो, यह हम नहीं दिलसे चाहते हैं ॥
हम अपना स्वत्व न खोऍगे, चाहे-हो जाएँ सभी तबाह ।
सब एकतया हो डटे रहें, इतनी सी हमको है पर्वाह ॥
किस सरणिका अनुसरण करें, ज्यों बचें प्राण औ अपना पन ।
अपनी सी सबकी बहू बेटी, इसका स्वागत सब करें सजन ॥
इस दृष्टी से हमको देखो, यह भार सभीके सर पर है ।
मिल-सोच समझकर क़दम धरो, पगडंडी-टेढी ऊपर है ॥

(सबके सब)

दोहा—हैं हैं जशमे ! क्या कहा?, देखे तुझे कुदृष्टि ।
है न अकेली तू समझ, उलटा दें हम सृष्टि ॥

बेटी-बहुओंके सत्सतीत्वकी, रक्षाकरने मर मिटने को ।
ऑतोंका ढेर लगा देंगे, डट जाऍगे हम कटने को ॥
सब चाहे जानसे जाएँ हम, पर उसके नेत्र निकालेंगे ।
जीता न उसे हम छोडेंगे, टुकडे उसके कर डालेंगे ॥
बाज़ी सिर धड़ की लगा देंगे, पर आन न जाने पाएगी ।
तेरे सतीत्व को रंचमात्र भी, आँच न आने पाएगी ॥

---

१ राखा ।

(जशमा)

दोहा—पाप बसा है चित्तमें, काम-अंध भूपाल ।
क्या होगा निश्चय नहीं, प्रजा वर्गका हाल ॥
बस बात साथ ही यह भी है, जब दिवस नाशके आते हैं ।
तब बुद्धि ठिकाने नहीं रहे, वे उतर बदी पर जाते है ॥
पर हाय प्रजाकी उस नृपको, ऊपरसे पटक गिरा देगी ।
यदि सत्य-शील-संगठित प्रजा, गत उसकी बुरी बना देगी ॥
सचमुच वह देश नष्ट होता, नृपके व्यभिचारी होनेसे ।
मर-खपजाती है प्रजा सभी, अघपथानुसारी होनेसे ॥

(त्रिकम)

दोहा—त्रिकमने यह विनयकी, बातें थीं बलदार ।
सराबोर है ओजमें, ओड भ्रात दरबार ॥
अब दास्यभावमें रहनेको, हमने तो जन्म नहीं पाया ।
सत्ताके सत्यानाश हेतु है, दैव यहाँ हमको लाया ॥
करनेको नाश कुशासनका, हमने अवतार लिया जगमें ।
इसको तो अभी कुचल देंगे, बह रहा खून है रग रग में ॥
बस रह पाएगा नाम नहीं, कुछ शेष मात्र तक लेने को ।
होगा समूल सब वंशनाश, भूतल हलका कर देने को ॥
पर हममें एकता हो निश्चित, तब वह साम्राज्य हमारा ही ।
बलवती ऐक्यता होनेपर, धुलजाय पाप यह सारा ही ॥
चढना बलिवेदीपर अच्छा, बन्धनमें ठीक नहीं रहना ।
दासत्व-शृंखलामें बँधकर, माँ का अपमान नहीं सहना ॥
सचमुच तोते जैसा पंछी, पंजर-सुवर्ण आसदी है ।
वह दूध-भात फल खाकर भी, समझे अपनेको बंदी है ॥
व्यभिचारी नृपके शासनमें, हम निधनोंकी नहीं कुशल यहाँ ।
इन आततायियोंके कारण, सकटमें जान औ मान कहाँ ॥

(ओडवर्ग)

दोहा—त्रिकमकी सब बात सुन, जागे ओड सुजान ।
उत्तर एक मता दिया, सबने छाती तान ॥

हे त्रिकम! क्यों घबराते हो, हम सभी तुम्हारे सँगी हैं।
दुःख सुखमें साथ तेरा देंगे, राजासे सब बदरँगी हैं॥
उसके शासनमें भी रह कर, श्रम या मज़दूरी करने की।
नहीं उदरपोषणा की है चाह, इच्छा है एक कट मरने की॥
यद्यपि सब दीन निहत्थे हैं, शस्त्रोंके विन निरुपाय सभी।
प्रस्तुत तथापि हैं यहाँ नहीं, सहनेको हम अन्याय कभी॥
कुछ शक्तिहीन सत्ता विहीन, विग्रह उससे क्या ठान सकें।
अपने बचावकी युक्ति भली, कुछ बतलाओ तो जान सकें॥

(त्रिकम)

दोहा—पंचोंसे यह प्रार्थना, करता हूं हर बार।
बचे प्रतिष्ठा-देशमें, पहुँचें किसी प्रकार॥

इस दूषित वायुमंडलमें, डट स्वयं सामना कर लूँगा।
मत मेरे कारण कष्ट सहो, मै इकला ही मर भर लूँगा॥
मालव जाएँ सब आप लोग, मैं वीर मृत्यु मर जाऊँगा।
मालवमाँका पिया पय मैंने, नहीं इसको कभी लजाऊँगा॥
हूं वीर सुभट त्रिकम विक्रम, उस नृपको मार गिरा आऊँ।
फिर पत्नी सुतको कर समाप्त, मै अंत वीर गति को पाऊँ॥
यह निश्चय अटल मेरा प्यारो, नहीं प्रणसे हटने वाला हूं।
ओडनका स्तन मैं चूँघा है, नहीं इसे लजाने वाला हूं॥

(सबके सब आवेशमें)

दोहा—त्रिकमकी यह बात सुन, बोला सब परिवार।
हम न जायंगे बन्धुवर, लिया अटल प्रण धार॥

जब तक है जान हमारी यह, तब तक तब साथ न छोडेंगे।
निश्शस्त्र है तो क्या पर्वाह है, पर पद नहीं पीछे मोडेंगे॥
हो रहे एक मत हम सब है, अब सत्ता क्या कर सकती है।
हम शक्तिपर महाशक्ति हैं, तब वह शक्ति झुकसकती है॥
पर फूलोंके द्वारा लड़ना भी, मना किया नीति द्वारा।
शस्त्रोंकी बात फिर कहाँ रही, "यह नहीं कहा भीती द्वारा॥"

विग्रहमें है संदेह यही, नहीं जाने कौन विजय पाए।
पर मरता है निश्चय प्रधान, नर और विपक्षी क्षय जाए॥
कहीं लाभ लड़ाई लड़नेसे, कहीं भागे मिले भलाई है।
इस समय न लड़कर सब मिलकर, यदि भागे मिले बड़ाई है॥
प्रस्ताव सर्वसम्मतिका है, कहीं दे के पीठको भागें दूर।
सबका शुभ-लाभ इसीमें है, गति वेगवती हो जैसे पूर॥
काठी प्रदेशको छोड़ कहीं, किसी अन्य देशमें बस रहना।
श्रम करके देह निभानी है, औ अन्तमें है सब कुछ सहना॥
यहाँ नहीं सही तब और कहीं, मज़दूरी जा कर कर लेंगे।
अब श्रेयस्कर औ ठीक यही, इस भयस्थानको तज देंगे॥
"संकडे सकडं ठाणं" तज, ये ज्ञातपुत्रने वचन कहे।
फिर इस वायुमण्डलका दूषित, भूत चढ़ा सिर पर न रहे॥

(त्रिक्रम)

दोहा—त्रिक्रमने सविनय कहा, सुनो ओड परिवार।
तजें-रहें किसविध यहाँ, दोनों ओर दुधार॥

इस स्थान छोडनेमें हमको, सहना होगा अब कष्ट कड़ा।
रस्ता ज़रूर वह रोकेगा राजा, राक्षस-मति नीच बड़ा॥
उत्पन्न समस्या "व्याघ्रतटी" वत्, न्याय उपस्थित आगे यह।
हम दो जीवोंकी कुशल नहीं, निश्चित निर्णय मम आगे यह॥
अत एव पुनः कर ज़ोड़ कहूं, सब जाएँ न कष्ट खरीद करें।
सह लूंगा सब विपदा एकाकी, सिर मेरे जो आ बिखरें॥

(सबओड)

दोहा—सब ओडोंने फिर सभी, बातें कीं पुरज़ोर।
सँगमें रह कर हम सकल-विपद सहें अति घोर॥

तुम प्राण तुल्य दोनों व्यक्ति, सर-माथे पर होकर रहना।
नहीं प्राण देहसे अलग रहें, तनु छाया! वत् सँग ही बहना॥
नख अँगुलियोंसे भिन्न नहीं, हम सुख-दुखमें सब संगी हैं।
मालवसे चल यहाँ आए सँग, अत एव सभी इक रंगी हैं॥

'जीना-मरना हमसबका एक, इक रोम न बिछडे' बात सही ।
मर मिटें एक्यता पूर्वक यदि, स्व-जनपद हो विख्यात यहीं ॥

(सबका अपयान)

दोहा—सर्व सम्मति से लिया, सबने यह मत ठान ।
निश्चय इक अपयान का, ज्यों बच जाएँ प्राण ॥

कपड़े-लत्ते सब कुछ बटोर, ले पोटलियाँ लादे सिर पर ।
एक दम सब भागे जान बचा, शंका न थी कि मुड़ देखें फिर ॥
बारा बजते तक तो सारी, कुटियोंमें ओड न एक रहा ।
सब पीठ दिए थे भाग रहे, मालव जानेका भाव रहा ॥
त्रिकम-जशमा को ले घेरेमें, ओड न अब उस ठौड़ रहे ।
अंधड गति-वेग समान सभी, वे वातप्रमी सम दौड़ रहे ॥
गोमूत्रिक व्यूह बना रचना, वे वीर वेगमें बाघ हुए ।
वे बात बातमें सिद्धपुरी, पाटनकी सीमा लांघ गए ॥
देखा न किसीने मुड़ कर भी, जीने मरनेका प्रश्न न था ।
दोनोंकी जान बचे, जशमाके शील जतनका यत्न प्रथा ॥

इति जशमाचरित्रे चतुर्थः सर्गः ॥

नमो त्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्त महावीरस्स

जशमाचरित्रम् ।

सतीनिदर्शनकाव्यम् ।

पञ्चमः सर्गः ।

दोहा—बीहड़-विपिन-पहाड़सी, बीत रही थी रात ।
तदुपरान्त फिर आगई, आशाहीन प्रभात ॥

(सिद्धराज)

गीत

है व्यथा विरहकी रात बुरी, अति सोच सोच यह कहती है,
भामिनिकी याद सताती है, रह रह कर आह निकलती है ॥ टे०॥
यह दर्द निराला दिलका है, कट जाता जिससे अन्दर है ।
लगता है तीर कलेजेमें, घायल हो जान सिहरती है ॥ १ ॥
जी में ही चिन्ता रहती है, जीके आने पर जान बचे ।
जी न आवे जी जाने पर, टाली ने किसीसे टलती है ॥ २ ॥
कैसे जानूं मैं इसको अब, यह कामुकता या बर्छी है ।
पड़ती निगाह जब तिर्छी है, तलवार जिगर पर चलती है ॥ ३ ॥
जिसदिनसे आँखोंमें आई, सजनीकी मूरत आँखोंमें ।
मन हाथसे निकला जाता है, सूरत पर जान तरसती है ॥ ४ ॥
सारे प्रयत्न मम व्यर्थ गए, जी पर नहीं मेरी एक चली ।
अत्यय से भी बढ़कर जी की, मुझको यह बात खटकती है ॥५॥
उससे प्राणोंकी बाज़ीका, शतरंज बिछाना ही होगा ।
मुहरोंको मात अगर दूं तो हालत यह तभी बदलती है ॥ ६ ॥
मायाके न्यारे खेल सभी, सौन्दर्य कहाँ बरसाते हैं ।
ऊपर धरती पर कमल खिला, उर्वर पर खार उगलती है ॥ ७ ॥

(स्वगत)

निद्रा वैरन का नहीं हुआ, आह ! दौरा सारी रात्री भर ।
उस नृपके लिए निराशा थी, आगे सूर्योदय होने पर ॥
मानो इसका तो उदय आज, कठिनाई से हो पाया है ।
अति शीघ्र नहाने धोनेसे, रह गई अधूरी काया है ॥
झटपट सब बदल दिए कपड़े नहीं बुद्धि रही ठिकानेपर ।
धुन थी जशमाके देखनेकी, जाऊँ उस सरके कोने पर ॥
नृप गया, वहाँ जा कर देखा, मज़दूर न था कोई आया ।
फिर सोचा यह क्या बात हुई, रह रह विचार यह उठ पाया ॥
समझा आँधी सी आई थी, कुछ वर्षा सी भी बूंदें आई है ।
इसलिए आज मजदूरोंने शायद यह देर लगाई है ॥
बस एक याम तक राह देख, श्रमजीवी कोई न दीख पड़ा ।
हो गया अन्तमें विस्मय सा आश्चर्य चकित भी हुआ बड़ा ॥
चल पड़ा टहलता सीधा ही वह-झोंपड़ियोंमें आ धमका ।
पर यहाँ एक भी ओड न था, बन गया ठिकाना था गम का ॥
आह ! पीछे किसी समय जिनमें होता था जन कलरव भारी ।
आवाज न चिड़िया तक की अब, उजडी सी कुटियाएँ सारी ॥
यहाँ बसते ओड हजारों थे, अब नाम शेष भी रहा नहीं ।
आशा प्रवाह पड़ गया मंद, गति शिथिल हृदयकी हुई वहीं ॥
मारी गई सुध बुध भी सारी, अन्धेरा आँखों पर छाया ।
इस कूटनीति पर जशमा की आश्चर्य अधिक मन पर आया ॥
क्या कहें कि किस विद्यालयमें किसने यह बुद्धि सिखाई है ।
आता है पता बताना भी, मति मेरी भी बौराई है ॥
शायद वह युद्ध कुशल भी हो, इस घटनासे यह जान पड़े ।
संकेत मात्र उसका पाकर, संगठन हो गया खड़े खड़े ॥
उसका सब आशय जान गया, दी सम्मति है भग जाने की ।
मैं करूं प्रतारित उसको झट, विधि समझूं उसके पाने की ॥

साधन-सामग्रीके समक्ष वे मच्छर कीट समान सभी ।
वह भला कहाँ तक भागेगी, मैं जा पकडूं इक आन अभी ॥
जब पंजेमें आजाएगी, नहीं कभी छूटने पाएगी ।
मैं उसको क्षमा करूं न कभी, वह समय गवाँ पछताएगी ॥
लूं बना प्रेयसी फिर अपनी, या यमकी प्रिया बनाऊँगा ।
सिर-धड़ ओडोंके काट काट, गल रुंडमाल पहनाऊंगा ॥
हो आते थे रोमाँच अंग आँखोंमें लाली छाई थी ।
होठोंको दाँतो तले दबा मुखसे चबचबी लगाई थी ॥
वह अग्निकुंडसा दहक पड़ा ज्वालाएँ अंगसे फूट रहीं ।
सर पटक पटक रह जाता था, कुढ़नेकी लहरें छूट रहीं ॥
बोला मैं अभी पकड़ उसको, भुजबन्धन वाले घाट तरूं ।
यदि कोई मार्गमें बाधक हो सिर तनसे उसका काट धरूं ॥

निश्चय

दोहा—यमपुर पहुँचाए बिना, गति होगी क्या और ?
कुटिल प्रेरणा जग उठी, बन अनीति सिर मौर ॥

दुर्वृत्तिका आश्रय पाकर बच सका न वह कुछ दुर्नयसे ।
पाकर संकेत कुमित्रोंका, हट गया दूर यमके भयसे ॥
वह दुर्वाक्योंको बोल रहा, उसके मनमें अतिदुरित जमा ।
वास्तवमें दुर्दिनके प्रतापके सन्मुख आँखें मीच नमा ॥
दे दी तिल-अंजलि सन्नय को, आवरण बुद्धिपर खूब रमा ।
मर चुकी आत्मा जीतेजी, मिट गई चित्तसे दया-क्षमा ॥
छोटी सी कीड़ीके ऊपर, ले चढ़ा जोड़ कर सेना दल ।
अगणित घोड़ोंकी पैड़ोंसे हिलगया भूमिका वक्षस्थल ॥
धूली खुरकी उड सविता तक, नभ ऊपर छाती जाती थी ।
हो पैदलसे कम्पायमान शिखरोंके कूट हिलाती थी ॥
हस्तीसमूहकी स्याही से भू-नभ श्यामल गुहराती थी ।
झँकार रथोंकी जगतीको, अद्वैत, भाव कहलाती थी ॥
घन-ढोल-वाद्य-रणभेरी से, झट गूँज उठा आकाश सभी ।
योगिनियाँ खाली खप्पर ले चल पड़ीं रक्तके लिए तभी ॥

सज गया भैरवी रुद्र मंच नटराज दुराग्रह आ चमका ।
आ गया नृत्य-तांडव करने अँगार अनल, पट ले यमका ॥

दोहा—अभी विचारे ओड सब करते थे जल पान ।
चिन्तासे कुछ मुक्तसे, समझें थे उस आन ॥

जब नज़र घुमा पीछे देखा रेणुसी उड़ती दीख पड़ी ।
जिस ओर सिद्धपुर पाटन था, बस दृष्टि वहीं पर ठीक अड़ी ॥
झटपट जशमाने देख उसे, कह दिया सैन्य दल चढ आया ।
है ज्ञात हो रहा सिद्धराज नद रक्त बहाने बढ-पाया ॥
वह मेरे कारण एक एक व्यक्तिका खून निचोड़ेगा ।
निस्त्राण ओड़ लोगोंको यह जीता न किसीको छोड़ेगा ॥
दुर्दैव ! देशमें काल पड़ा परदेशमें भी आ मँडराया ।
कर रही मृत्यु आवाहन अब विपदाका बादल घिर आया ॥
किस सत्पथका आश्रय लें अब 'इस ओर कूप यहाँ खाई है' ।
निर्धन-निरीह जन क्या कर सकता, यह सत्ता दुखदाई है ॥

(सबओड)

दोहा—मात्र एक स्वरमें सभी, ओड़ उठे यह बोल ।
जीवित हम जबतक सकल, तू जशमा मत डोल ॥

हे बहन ! साथ तेरा देंगे इमदाद से मुख नहीं मोडेंगे ।
उसके शस्त्रादिक छीन झपट, बिन मारे उसे न छोडेंगे ॥
हथियार-सत्य-आग्रह होगा, सन्नद्ध हों न डर जाएँगे ।
नहीं देंगे पीठ समराँगणमें मारेंगे और मर जाएँगे ॥
कुल-ओड नाम प्रख्यात करें नहीं कभी कलंकित करना है ।
नरमुंडों का अब ढेर लगा तुमुलाँगण पार उतरना है ॥

दोहा—जशमा समझाने लगी, सुनो वीर वर ओड़ ।
यह राजा वाचाल अति, देता है मुँह मोड़ ॥
कर सकता सब भाँतिसे, प्रजा वर्गका भंग ।
रक्तपात करते समय, कर देगा बद रंग ॥

वह कूट नीतिका पंडित है, मुँहमें उसके मीठापन है।
एक नंबरका है जालसाज, मायिकता इसका साधन है॥
विष्णुकी मायासे कुछ कम, उसकी मायाका जाल नहीं।
दे फँसा प्रलोभनमें तुमको करके वश बनता काल कहीं॥
लालच देकर धन सम्पत् का सर्दार बनाना चाहेगा।
सब कुछ देकर भी तुम सबको, मुझसे छुड़वाना चाहेगा॥
बहकाना खूब उसे आता, नए पेच दाव चक्कर देकर।
सब बडे बडे है फाँस लिए साधारण जन गण से लेकर॥
बहुभाग राज्यका देकर भी तुम सबका दिल भरमाएगा।
तब लात मार कर लालच को भूतल पर कौन गिराएगा॥

(सबका उत्तर)

दोहा—सबने मिल उत्तर दिया, वृथा न प्राण यह जाय।
तेरी रक्षा हित बहन! तन मन देंगे लगाय॥

गीत

नारी सतीत्व की रक्षामें, हम अपना रक्त बहाएँगे।
यदि प्राणकी बाजी लग जाए, हम तब भी तुझे बचाएँगे॥ टेक
तब भी हम तुझे बचाएँगे॥ नारी०

तुझसे बढकर नहीं मौलिक कुछ, तन मन धन वैभव जगत् सभी,
ले सात बादशाही तक भी न्यौच्छावर कर दिखलाएँगे।
न्यौच्छावर कर दिखलाएँगे तब भी हम तुझे बचाएँगे॥ नारी०

अपनी न आनको छोडेंगे, संबन्ध शहीदी जोडेंगे।
प्रत्येक ओड या बच्चे तक, मिल बलि-वेदी चढ जाएँगे॥
मिल बलि-वेदी चढ जाएँगे तब० नारी०

हे बहन! आंच न आएगी, हिम्मत सब-कर दिखलाएगी।
हम मृत्युंजय बनकर सारे, भय नहीं किसी का खाएँगे॥
भय० तब० नारी०

सब ओडो! मिलकर जय बोलो, भगवती, भवानी जशमा की,
देवी क्षत्राणी परमा की, जयकार बुलाते जाएँगे ॥

जयकार० तब० नारी० ४

हम ओड़ जाति अति सर्वोत्तम, मालवका गौरव सब सत्तम।
निज टेक न छोड़ें मरते दम, मिल अपना धर्म निभाएँगे ॥

मिल० तब० नारी० ५

रक्षा करना कर्तव्य परम! बच रहे सतीकी हया-शरम।
हो रहा हमारा खून गरम, हम वीर तुल्य गति पाएँगे ॥

हम० तब० नारी० ६

हो सती कृपा तेरी हम पर, दिखलाएँ हाथ छाती तन कर।
सत्ताके सन्मुख बन फणियर, सबको डस डस कर खाएँगे ॥

सबको० तब० नारी० ७

झुक सकेंगे न ये ओड़ कभी, यहाँ देखेंगे सब लोग अभी।
देकर सहर्ष तन बली सभी, चरणों सिर ढेर लगाएँगे ॥

चरणों० तब० नारी० ८

दोहा—एक, सूत्रमें सब हुए, ओतप्रोत बन वीर।
देवी सम्पद्-युक्त हो, सजे ओड रण धीर ॥

नरसिंह रूप होते प्रतीत वृन्दारक से भी अधिक भले।
मानो शरीरमें मानवके हैं शील सहायक देव ढले ॥
धुन इनकी एक सती रक्षा, रक्षा सतीत्व संभाषण था।
प्रस्तुत सतीत्व-रक्षाके हेतु, करता सतीत्व आकर्षण था ॥
ले कालधर्मकी वरमाला आगे ही आगे बढ़ते थे।
मिलकर सतीत्वकी रक्षा हित, सोपान स्वर्गका चढते थे ॥
था परम ध्येय ओडोंका यह दानवता सब कुचली जावे।
आगे फिर किसी सतीको भी खल दुष्ट सताने न पावे ॥
कटिबद्ध विजयके लिए खड़े, यश मातृशक्तिके गाते थे।
जय जय जननी जय जय सुखदा ध्वनि एकाकार लगाते थे ॥

(जशमा)

दोहा—सेनापतिके वेशमें, स्थित हो जशमा नार।
एकसूत्रमें ओड़ गण, पिरो दिए ज्यों हार॥

(ध्यान)

रश्मी सूर्य विकास वाहन-यथा, है सिंहहारावली।
प्रातः भूषणवस्त्रसी तनपटी, जो राजती है भली॥
चारों भूत भुजास्त्रसी युग वनी, शंख-त्रिशूली बली।
दुर्गे-शक्ति-नमन करूं भगवती, चंडी भवानी भली॥

गीत

रणचंड़ी तू अब जाग ज़रा, छिटकादे फागण फाग जरा।
खल सारे पथमें छाये हैं, घनघाती (पशुघाती) चक्र चलाये हैं
गौमाता सी मैं आतुर हूं, कर तू मुझसे अनुराग जरा॥
रणझंडी फर-फर झूल उठी, पगसे ऊपर तक धूल उठी।
प्रलयंकर मारू बजता है, निज निद्रा देकर त्याग जरा॥
तलवारोंकी चमकार तले, वच सकते तेरी ढाल तले।
रण काली खप्पर लेकर तू इनके पीछे अब भाग जरा॥
दृढ अश्वारूढ त्रिशूल लिए, शर-शक्ति चाप या शूल लिए।
यहाँ दौड दौड कर धाय रहे, नर मुंडोंका कर याग जरा॥
घन धारा रक्त गिराएँ गे, मुर्दे भी वहते आएँगे।
ले लम्पट भूतपिशाचों को, किल्कार मार गा राग जरा॥
धरणी होती यह आतुर है, दुख देता जब महिषासुर है।
अरु शुंभादिक बलशालियोंको, ले बांध पाशमें नाग जरा॥
वध चंडमुंड खल दुष्ट अडे, हत रक्त-वीज-वल-पुष्ट खडे।
नालीक शतघ्नी यन्त्रोंसे, वरसा दे उलटी आग जरा॥
टंकारें हों धनुषों परसे, शरवर्षा ऊपर से वरसे।
वंदूक-तोप-वमवाजोंका, कर सत्यानाश विभाग जरा

(ताण्डव)

सती बनी रणांगणा, समान कालिका खड़ी ।
अजेय शक्ति शालिनी, मही महाम्बिका बड़ी ॥
तडित्प्रभा समा असी, दिखाई भामिनी पडी ।
महा-मना तपोधना, कृतान्तयामिनी अडी ॥ १

स्वयं स्वजन्य स्वर्ग की, स्वतन्त्रता अनाथ में ।
भुजा उठा के ज़ोरसे, कुदाल लेके हाथ में ॥
प्रहारके लिए खड़े, लगा के धूलि माथ में ।
उमंग अँग सँगकी, तरंग ढँग साथ में ॥ २

प्रचंड वीर विक्रमी, न राजसैन्य से डरें ।
रणस्थली बली छली, कली कली मली करें ॥
लताड़ लात की लगा, गिरा के भूमि में धरें ।
परिश्रमी पराक्रमी, कभी न युद्ध से टरें ॥ ३

घुमा के दण्ड भैरवी, कराल व्याल चाल से ।
स्वरूप नेत्र कैरवी, प्रतीत होत लाल से ॥
अनन्त वीर्यवन्त ये, डरें कभी न काल से ।
अनन्य धन्य धीर ये, दृढ-प्रतिज्ञ भाल से ॥ ४

(तैयारी)

तैयार एक मतसे होगए नहीं जीने की कुछ ममता थी ।
था स्वाभिमान निज देश परक मानवपनकी यह समता थी ॥
सब लेके थाली-लोटाऔ-चक्की के पाट-डंडा लकड़ी ।
पत्थर-कंकड़-धूली-गुबार, थी ईंट किसीने भी पकड़ी ॥
जशमाकी ओर थे देख रहे, आज्ञा-की ताक लगा के वे ।
सकेत अंगुलीका चाहते, कि टूट पडें सिंह जैसे वे ॥
इतनेमें उन्होंने यह देखा, सेनाने घेर लिया धाकर ।
हो चक्रव्यूह की रचनामें नाकाबंदी करली आकर ॥

(राजाकी ललकार)

दोहा—सिद्धराजने जोर से, देकर झट ललकार ।
नीच! भगोड़ो! पामरो,! छोड़ो सब हथियार ॥

हो जाओ आत्मसमर्पण सब तुम कहां भागकर जाओगे ।
यदि किया आज्ञाका उल्लंघन, निज करनीका फल पाओगे ॥
यह खूब याद रक्खो दिलमें, यमपुरका पथ दिखलाऊंगा ।
बचने न पायगा एक ओड, चुग चुग सबको मर वाऊँगा ॥
हथियार डालदो सब अपने, हो जाओ सब बंदी मेरे ।
जशमाको ले कहाँ जाओगे आगई मौत क्या है नेरे ॥

(जशमा)

दोहा—सविनय जशमाने कहा, प्रजावर्ग के बाप !
हम सब ओड गरीब है, न दे हमें सन्ताप ॥

हम भीख जानकी माँग रहे, दो अभयदान तुम हमें अभी ।
क्या मार निहत्थों को कोई कहीं बनके वीर नर रमे कभी ॥
तू दे उत्ताप न रंकों को, हम सब गरीब प्रजा तेरी ।
अपनी सन्तान जान हमको, सुन राजन्! यह विनती मेरी ॥
हम अंग और प्रत्यंग तेरे, तू क्यों इनका करता है नाश ।
निर्दोषोंकी बलि क्यों करता, क्या चाहता अपना सर्व विनाश ॥
क्या पिता कभी कर सकता है, पागल पुत्रोंको भिन्न कभी ।
है पूत कपूत अनेक हुए, माता-कुमात न हो खिन्न कभी ॥
नरराज! तेरा यह काम यही, सुतके समान पालना प्रजा ।
रक्षक की ठौर भक्षक मत बन, तू नरसिंह है हम फना अजा ॥
है बाज़ी हाथ अब भी तेरे, वरना तुझसे खुस जाएगी ।
देखना जरा भी भूला तो उजली कीर्ति मुस जाएगी ॥
सोलंकि वंश-कुल पर तब तो काला पानी फिर जाएगा ।
राजन्! गरीबकी हाय बुरी, सब नष्ट भ्रष्ट हो जाएगा ॥
लोहा पानी बनते देखा, भट्टीमें धोंकनी धुकने पर ।
तेरा भी हाल यही होगा, रंकोंको मार मुकाने पर ॥
कुछ तेरा नहीं बिगाड़ा है, क्यों हमसे तू लड़ने आया ।
नही कोई वस्तु उठा लाए, है खेद इन्हें घड़ने आया ॥
अब इसमें तेरी भलाई है, तू मार्ग हमारा मत रोके ।
अपने मालवमें जाने दे, ये नहीं रुकेंगे, मत टोके ॥

तू साहस मत कर लड़नेका, कुछ हाथ नहीं लग पाएगा।
हमसे भी मात जब खाए-लोगों, को क्या मुँह दिखलाएगा॥
घिस-घिसके हाथ पछताएगा, कुछ पल्ले पडने न पाए।
लेनेसे जान निहत्थों की, महापापी ही समझा जाए॥
तेरा महत्त्व इसमें ही है, अब आगेसे हट जा मेरे।
नहीं सफल स्वप्नमें भी होंगे, मनसूबे ये सारे तेरे॥
है सभी असंभव सी बातें, तेरी न एक भी चल सकती।
पत्थरकी रेखा बात मेरी, है अमिट कभी नहीं मिट सकती॥
यदि यह स्वीकार नहीं है तो ओडोंके शिर धड़ जाएँ कट।
मरते दम आन न छोडेंगे, शोणितके नद बहजाएँ झट॥
इसमें तेरा यश-भाग्य, सौख्य गौरव आदिक बह जाएगा।
बदनाम मुफ्तमें ही होगा, कुछ पास नहीं रह पाएगा॥
सब थूकेंगे मुखपर तेरे, काली-काली करतूत देख।
काली पंक्तिमें लिखा जाए आपाप! नीच इतिहास लेख॥
श्रम-जीवन ही मुझको प्रिय है, इस विना और कुछ चाह नहीं
राजा महाराजा इन्द्रादिक पदको पानेका डाह नहीं॥
पति त्रिक्रम जीवन है मेरा, तन मन का ईश्वर औ स्वामी।
देखो महेन्द्रकी भाँति खड़ा, विख्यात वीरतामें नामी॥
कंकड़-पत्थर-धूली, मट्टी वह मालिक इनका कहलाता।
क्यों हमसे अभी, गरीबोंका तू खून चूसना है चाहता॥
कुछ दया भाव करदे हम पर, निर्बल धनहीनों को न सता।
वर्ना थोडा सा जीवन यह नहीं ओस बिंदुसम लगे पता॥
हम मौतका स्वागत करते हैं यह अन्तिम ध्येय हमारा है।
नहीं नाम मात्र को भी संशय, 'मत तीन लोकसे न्यारा है'॥

दोहा—पत्थर यह सुनकर विनय, करदें नैज बहाव।
पर राजा के हृदय तक, कुछ नहीं हुआ प्रभाव॥

समझा यह अबला नारी है, मति अभी ठिकाने लाता हूं।
इसने मुझको क्या समझा है, कुछ इसको मज़ा चखाता हूं॥

पलभरमें छक्के छुडा दिए, रण धीर, बीरके बड़े बड़े ।
यह बेचारी किस गिनती में है, अभी बतादूं खड़े खड़े ॥
इतना कह नृपने दी आज्ञा, ये शस्त्र डालना नहिं चाहें ।
करदो संहार अभी सबका, पहले काटो इनकी बाहें ॥
हाँ खबरदार ! मत तरस करो, हो हवन शतघ्नी से सबका ।
पर इन दो को तो बचा लेना, जशमा तथा च बाल रब का ॥
इनके तनके रोमों तक को रणमें अछूत रक्खा जावे ।
महलोंकी छटा बढाऊँ गा, यह किसी भाँति हाथों आवे ॥
पूरी भी करूं हविस अपनी, बचना इसका अब दुस्तर है ।
ऐसी वैसी कुछ बात नहीं, मानो रेखा प्रस्तर पर है ॥

दोहा—ओडोंने यह सब सुना, भर आया मन जोश ।
भुजा फड़कने लग गई, खुल गए सबके गोश ॥
जशमा का पा सकेत सभी, भूखे सिंहोंसे छूट पडे ।
सैनिकोंके ऊपर झपट झपट कर वानर सेना से टूट पडे
बहुतोंके अस्त्र, शस्त्र छीने, मरते भी थे, पर बढते थे ।
वे अपना मोर्चा पीछे रख इनके ऊपर जा चढते थे ॥

(समर का गान)

भारती-सती-भवानि, शक्ति योग माया ॥ टेक ॥
ज्वालपुँज- तीव्र छाय, सबके समक्ष आय;
नारी दिव्य दे दिखाय, स्वर्णवर्ण काया ॥
ओड सर्व हैं सहाय, डटे एक साथ आय ।
अट्टहास होत हाय, शत्रु डगमगाया ॥
थे चढे रथादि यान, दक्ष युद्ध चाप तान ।
व्यूह में नाराच बाण, सैन्य पर चढाया ॥
पर्शु-तोमरादि शस्त्र, चक्र-गुर्ज मेखलास्त्र ।
छीन पाए जो अमत्र, हाथ ले चलाया ॥
एक साथ हो के सर्व, रोष से गिरा के गर्व ।
उग्र यज्ञ भीम पर्व, विंब तप्त पाया ॥

शल्य शूल पाश दंड, से किए थे भिन्न मुंड ।
खड्ग से किए प्रखंड, जो भी दुष्ट आया ॥ ६

अन्तमें दिए गिराय, बीच बीच धाय धाय ।
भागे सब पछाड़ खाय, पता दूर पाया ॥ ७

सिद्धराज युद्ध ठान, गिद्ध या पशु समान ।
राक्षसादि के अनुमान, रूप था बनाया ।
भारती-सती भवानि, शक्ति योग माया ॥ ८

दोहा—घमासान रण मच गया, पड़ी-बड़ी मुठ भेड ।
समर क्षेत्र से सैन्यके, तोड़े पैर उखेड़ ॥

इस सिद्धराजकी सेनाके सब, पैर खिसकते जाते थे ।
वे सैनिक क्षत्रिय हो कर भी, नहीं पास फटकने पाते थे ॥
मद उतर गया उन लोगोंका, सब ओर शवोंके ढेर लगे ।
अश्वारोही तक दहल गए, सोलंकी भट इक बेर भगे ॥
ओडों का साहस था अपूर्व, रह गए देख कर दंग सभी ।
कुर्बानी देख निर्बलोंकी, उड़ गया जंग का रंग तभी ॥
राजाने उखड़े पग देखे, सेना की स्वयं कमान गही ।
हो विवश मोर्चे पर आई, जो बची खुची या रही सही ॥
उस यंत्र शतघ्नी के चलते ही दानेसे भुनते चले गए ।
बच सका न कोई भट्टी में या मृत्युपटों में दले गए ॥
यह लो राजाके पाँच शरोंनें, त्रिकमकी बींधी घन छाती ।
धम से वह गिरा धरा तल में, पर नहीं बुझी जीवन बाती ॥
तलवारें दोनों हाथों में इसने थीं पकड़ी हुई अभी ।
दो सोलंकी भट लालचसे कंकण उतारने गए जभी ॥
तब त्रिकमके भुज फैल गए, जो कुछ थे मृतक समान हुए ।
तब कर भूषणके साथ साथ, युग-भट यमके महमान हुए ॥

दोहा—पति मृत्यु हुए देख कर, जशमा हुई अधीर ।
लपकी तब उस ओर झट-लगा दूसरा तीर ॥

चल बसा गोद सम्राट तुरत, खाली हुई गोदीकी झोली।
जशमा प्रसन्न हो स्वामीके शवको आलिंगन कर बोली॥
स्वामिन्! अपना यह हृदय भार अब हल्का सा है हो पाया।
हैं स्वतंत्र दोनों हाथ भला फिर इकला जाना क्यों भाया॥
ठहरो मैं जाने नहीं दूंगी, मुझसे इस भाँति रुष्ट हो कर।
अपने को अर्पित किया मैंने, साक्षीमें अग्निमालाको धर॥
स्वामिन्! मैं वस्तु तुम्हारी हूं, सहगमन के लिए भी तैयार।
यह देन आपकी, मैं, इसको, पूरा करना चाहती इस बार॥
मेरा है यह कर्तव्य मुख्य तुम भला भाग क्यों खड़े हुए।
मुझसे छुट कर नहीं जा सकते, संबंध रक्तसे जड़े हुए॥
बस शीघ्र आपसे मुझको तो यह पैनी छुरी मिलाएगी।
अंचल गठ-बंधन पक्का है, तुमसे न अलग हो पाएगी॥
ठहरो क्यों निकले जाते हो, क्या इन हाथों में से मेरे।
नहीं स्वर्गलोक के भोगादिक हाँ सभी अकेले से तेरे॥
आधा अधिकार वहाँ मेरा, इसमें न कोई संदेह कहीं।
छाया समान सँगमें ले कर हाँ हाँ अपनाऊँ गेह वही॥

दोहा—द्रव्य और पर्याय से, युक्त सभी हैं वस्तु।
हर्ष-शोक क्या कीजिए, अस्थिर सब कुछ अस्तु॥

निज धर्म प्रेमके सूत्र सँग हम बँधकर दोनों हुए एक।
तब इस प्रकार से निराधार क्यों छोड रहे पति! रख विवेक॥
क्या जानेका अधिकार तुम्हें, मुझसे वियुक्त हो बन सकता।
दो जोडोंके बिन मुकुट एक सिर पर है कभी न तन सकता॥
हम दोनों इस नश्वर जगको अब एक साथ ही छोड़ेंगे।
बस रहें स्वर्गकी सीमामें, यहाँ से नहीं नाता जोड़ेंगे॥
यह एक साथ पूरी होगी यात्रा सुरपुरमें जाने की।
आगे नहीं इच्छा दुनियाके पापी मुँहको लख पाने की॥
जगकी रचनाको लानत है, जहाँ होती मच्छ-गलागल है।
पापी द्वारा धार्मिक मरते, ये घटना बुरी हलाहल है॥

उस ईश्वर पर धिक्कार पड़े, जिसको पवित्र जगने माना।
उसकी निर्मल हस्ती में से अपवित्र सृष्टिका बन जाना॥
कितनी अनर्थ वाली जगती, निर्बलको सवल सताता है।
मानव निज मानवता खो कर, जहाँ दानवता अपनाता है॥
बिखरी स्याही सी दुनियासे अब ऊबा मन सोलह आने।
यह कैसी क्षुद्रतमा रचना जहाँ कर्म बुरे पन्द्रह आने॥
क्षणभंगुर यह काया माया तब इनका क्या करना है मोह।
इस राजमार्ग का तोड़ डालना है ईश्वरभक्तिसन्दोह॥

दोहा—यह कह जशमा सतीने, लई कालकी ओट।
छुरी कॉंचली से गही, मारी उदरमें चोट॥

आँतोंका ढेर लगा आगे, वह छुरी तडित्वत् चमक उठी।
अंधेरा आँखोंमें छाया, राजा की सुध बुध गमक उठी॥
अपने सतीत्वकी रक्षा हित ओह! सती हुई बलिदान समर।
यह सत्य शीलको पालनार्थे, इतिहासोंमें बन गई अमर॥
है सभी पुद्गलोंमें अनन्य गुण अधिक पदार्थों से जिसका।
यह मौलिक है भवके भीतर यश हो गाथार्थों से इसका॥
अदृष्ट पूर्व यह दृश्य देख मलता था दोनों हाथ वहाँ।
रह गया स्तब्ध लख साहसको वह सिद्धराज-जयसिंह यहाँ॥
आँखें चुंधियाय गई उसकी मुँह उतर गया छविहीन हुआ।
अनुताप बँधगया पल्ले में, मन-लुब्ध क्षुब्ध, अतिदीन हुआ॥

(सतीका शाप)

दोहा—जशमा जब चढने लगी, स्वर्गभुवनसोपान।
नयन खोल जाते समय, दिया शाप उस आन॥

धिक्कारपात्र! ओ नरपिशाच! नहीं शांति प्राप्त तू कर पाए॥
तव भावि-राज्यका अधिकारी करके विरोध तुझे चर जाए॥
पानी सरमें नहीं ठहरेगा चाहे तू यत्न अनेक करे।
बन तेरी जानका कॉंटा सा, रहे सूखा यह अभिषेक करे॥
तेरी अनीतिकी अखिल विश्वमें, काली स्मृति रह जाएगी।
बलपूर्वक मैं यह कहती हूं, तुझसे न पूर्ति हो पाएगी॥

थोडेसे शेष रहे दिन हैं, कलुषित जीवनके अब तेरे ।
उठ सई सवेरे उषःकालमें, तेरा नाम न कब लेरे ॥

दोहा—वाक्य आखिरी शापके, छोड़ बीच ब्रह्मांड ।
कंधे धर प्रिय-पुत्रको प्राण वर्ग चक्राण्ड ॥
अपने श्रीपतिदेवका, लेकर आश्रय हाथ ।
गई स्वर्ग जशमा सती, निभा अन्त लौं साथ ॥

(सतीत्वमहिमा)

है आज भी उसका स्तवन दक्षिण दिशा गुजरात में ।
गायन अमर है काठियोंमें प्रति-मनुज गिर गात में ॥
नाम सीतातुल्य सब जन लेते प्रातःकाल पर ।
जशमा सतीके चरणकी, रज, हैं चढ़ाते भाल पर ॥

(उपसंहार)

जशमा अपने पति संग सदा, सुरलोक अदृष्ट समाय गई ।
पा नृपति पराजय ओडोंसे, हुई विलख दशा भटकाय गई ॥
कोनेमें घुसकर महलोंके वसुधा अपकीर्ति वसाय गई ।
मल हाथ पसार भुजा जगसे, समयान्तर काल समाय गई ॥

(अन्तिम-शिक्षा)

दोहा—शुभ करनीसे स्थिर रहे, नाम सर्ग-पर्य्यन्त ।
भवसागरसे पार हो, पावे कीर्ति अनन्त ॥

यह कथा हमें बतलाती है, मनकी लहरोंमें नहीं बहना ।
माता व देवियों के आगे, शिक्षा-अनुसार यही कहना ॥
अपनी प्रिय जान गवाँकर भी पहनें सतीत्वका ही गहना ।
वे देख परीसी सूरत को सीखें नर वशमें ही रहना ॥

इति जशमाचरित्रे पंचमसर्गः ।